ब्राह्मण दीक्षा प्रश्न पत्र - Laxmi Narasimha Das (ISKCON Temple E.O.K New Delhi)

परम पूज्य गोपाल कृष्ण गोस्वामी महाराज द्वारा द्वितीय दीक्षा के लिए सैद्धान्तिक परीक्षा -

आप ज्यादा-से-ज्यादा प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश कीजिए। गुरु महाराज समझते हैं कि आपने अभी भक्तिशास्त्री कोर्स नहीं किया है।

अ) भौतिक प्रकृति के बारे में:-

(1-अ) प्रकृति के तीन गुणों की सामान्य विधि से व्याख्या कीजिये। तीन विभिन्न गुणों में पाये जाने वाले लक्षणों का विशेष रूप से वर्णन कीजिए।

उत्तर – भगवान श्रीकृष्ण भगवद्गीता 14.5 में कहते हैं कि भौतिक प्रकृति तीन गुणों से युक्त है-

- सत्वगुण
- रजोगुण
- तमोगुण
- ये गुण जीवात्मा को बांधते हैं।
- भौतिक सृष्टि में प्रत्येक वस्तु इन तीन गुणों से प्रभावित होती है।
- ये गुण सर्व्यापी हैं।

गुण का एक अर्थ 'रस्सी' भी होता है।

इस प्रकार ये तीनों गुण बद्ध जीवात्मा को इस भैतिक जगत में बांधने वाली रस्सी या कड़ी है।

सत्वगुण सोने की कड़ी है।

रजोगुण चाँदी की कड़ी है।

तमोगुण लोहे की कड़ी है।

यदि कोई क़ैदी जेल में बंद है, तो क्या इससे अन्तर पड़ता है कि वह सोने,चाँदी या लोहे की कड़ी से बंधा है? कुछ भी हो,क़ैदी तो क़ैदी ही होता है।

भगवद्गीता (14.6/9) में इस बंधन के स्वभाव का वर्णन किया गया है।

तीनों गुणों के लक्षण –

	सत्वगुण	रजोगुण	तमोगुण
सामान्य लक्षण	पवित्रता,सुख,ज्ञान	असीमित इच्छाएँ,कठोर श्रम,लोभ,सांसारिक सुख	मूर्खता,निद्रा,आलस्य,नशा, अस्वच्छता

परिणाम	पापफ़लों से मुक्ति	सांसारिक कार्यों एवं दुःखों का बंधन	पागलपन,मूर्खता
अगला जन्म	स्वर्ग	पृथ्वी पर सांसारिक लोगों के बीच	पशु योनि और नारकीय लोकों में

(2-अ) क्या जीव नियंत्रित है या आजाद है या वह दोनों का संयोग हैं? समझाइये कि बद्ध जीवात्मा के भौतिक जीवन में स्वतन्त्र इच्छा तथा भाग्य एक साथ किस प्रकार घटित होते हैं।

उत्तर - भगवद्गीता के श्लोक (3.27) में श्रीकृष्ण कहते हैं, "प्रकृति के गुणों के प्रभाव से भ्रमित आत्मा स्वयं को क्रियाओं का कर्ता मानती है, जबकि वास्तव में ये क्रियाएं प्रकृति के तीन गुणों (सत्व, रज, और तम) द्वारा की जाती हैं।"

दूसरे शब्दों में, यद्यपि व्यक्ति सोच सकता है कि वह विकल्प चुन रहा है, परंतु वास्तव में वे "विकल्प" चुने हुए होते हैं और वह "स्वतंत्रता" एक भ्रम है। हम अपने पिछले कर्मों के परिणामों से बंधे होते हैं (भगवद गीता 18.61: "ब्रह्मयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि माययां")। साथ ही, हम भगवान के अंश भी हैं। हालांकि भगवान स्वतंत्र रूप से सब कुछ कर सकते हैं, हम, भगवान का अंश होते हुए, सूक्ष्म स्वतंत्रता रखते हैं; लेकिन यदि हम अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हैं, तो हम दंडनीय हो जाते हैं। वास्तविक स्वतंत्रता और जीव की स्वतंत्रता तभी आती है जब वह इस भौतिक शरीर की जंजीरों से मुक्त हो जाता है और अपनी शाश्वत स्थिति को पुनः प्राप्त करता है, अर्थात भगवान के शाश्वत सेवक के रूप में। चैतन्य चरितामृत 20.108 में कहा गया है: "जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास" – प्रत्येक जीवात्मा शाश्वत रूप से भगवान का सेवक है।

(3-अ) कर्म क्या है? विकर्म तथा अकर्म क्या हैं?

उत्तर – भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन करते हैं-

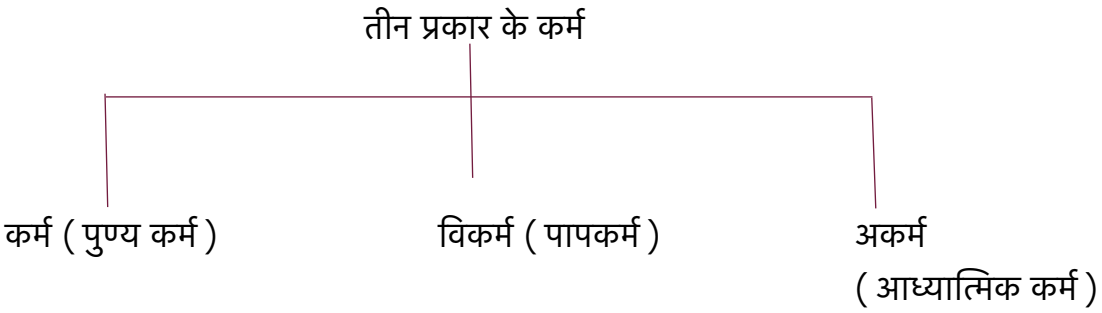

कर्म –

- सामान्यतया कर्म शब्द का अर्थ है "कोई भी कार्य"
- परन्तु कर्म शब्द का विशिष्ट अर्थ है पुण्यकार्य।

- पुण्य उन कार्यों को कहते हैं,जिनका वर्णन एवं संस्तुति श्रीभगवान ने शास्त्रों में की है।इन कार्यों को करने से व्यक्ति को बदलें में भौतिक लाभ प्राप्त होतें हैं।
- दूसरे शब्दों में, इन कार्यों के अच्छे फल व्यक्ति इसी अथवा अगले जीवन में भोगता हैं।
- पुण्य कर्मों के उदाहरण हैं, जैसे ग़रीबों को दान देना,अंधों की सहायता करना,निःशुल्क दवाइयाँ बाँटना,कुँए खुदवाना,वृक्ष लगवाना,भूखे को भोजन खिलाना इत्यादि।
- इन पुण्य कार्यों को करने से व्यक्ति भावी जीवन में सुख,सम्पत्ति,सौंदर्य,उच्च कुल में जन्म,स्वास्थ्य और यहाँ तक कि स्वर्ग में भी शरीर प्राप्त कर सकता है।

विकर्म –

- विकर्म का अर्थ है पाप अथवा निषिद्ध कार्य। ये कार्य शास्त्रविरुद्ध होते हैं,और सभ्य मानव-समाज के लिए श्रीभगवान द्वारा दिये गये नियमों का खण्डन करते है। सामान्यतया अज्ञानता के कारण व्यक्ति पाप करता है और फलतः उसे इस जीवन में अथवा अगले जीवन में दुःख भोगना पड़ता है।
- उदाहरण – चोरी,हत्या,नशा, मांसाहार आदि पापकर्म हैं।
- पाप करने से व्यक्ति दुःखी,निर्धनता,रोग,निम्न जन्म,कुरूप शरीर इत्यादि प्राप्त करता है।

अकर्म –

‘अकर्म’ का अर्थ है, ऐसे कर्म जो कर्म के नियमों से परे हैं। किंतु इसका अर्थ निष्क्रिय होना नहीं है।

- अकर्म वो आध्यात्मिक कार्य है, जो श्री भगवान की प्रसन्नता हेतु किए जाते हैं।
- चूँकि इन कार्यों में कोई स्वार्थपूर्ण भावना नहीं होती,इसलिए वे कर्ता को कर्मबंधन में नहीं बांधते।
- दूसरे शब्दों में अकर्म का कोई भौतिक परिणाम नहीं होता।
- उदाहरणार्थ, श्रीभगवान के नामों का कीर्त्तन,उनकी पूजा करना, उनकी सेवा करना तथा भक्ति के अन्य कार्य।
- अकर्म द्वारा व्यक्ति भगवद्भक्ति,सांसारिक कार्यों से विरक्ति एवं पवित्रता विकसित करके आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करता है।
- अकर्म व्यक्ति को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त करके भगवद्धाम ले जाता है।
- गीता (3.9)

(4-अ) 8 भौतिक तत्त्व क्या हैं?

उत्तर –

1. पृथ्वी
2. जल
3. अग्नि
4. वायु
5. आकाश
6. मन
7. बुद्धि

8. अहंकार

(5-अ) पाँच ज्ञानेन्द्रियों, उनके विषय तथा 5 कर्मेन्द्रियों का वर्णन कीजिये।

उत्तर – पाँच ज्ञानेद्रियाँ और उनके विषय इस प्रकार है:

1. नेत्र(आँखें) – दृष्टि (देखना)
2. श्रवण (कान)- श्रवण (सुनना)
3. घ्राण (नाक) – गंध (सूंघना)
4. रसना (जीभ) – स्वाद (चखना)
5. स्पर्श (त्वचा) – स्पर्श (महसूस करना)

पाँच कर्मेन्द्रियाँ –

1. हाथ (हस्त) – ग्रहण करना
2. पैर (पाद) – चलना
3. मुँह (वाक्) – बोलना
4. गुदा (पायू) – मल त्याग करना
5. जननेन्द्रिय (उपस्थ) – यौन गतिविधियाँ और मूत्र त्याग करना।

(6-अ) मन, बुद्धि तथा अंहकार के क्या कार्य' हैं?

उत्तर –

- मन – संकल्प, विकल्प तथा कामनाओं की उत्पत्ति करना।
- बुद्धि की वृत्ति – संशय, विपर्यय (विपरीत ज्ञान),निश्चय,स्मृति, निद्रा।
- अहंकार – मिथ्या अभिमान जिसके फलस्वरूप आत्मा भ्रमवश अपने को भौतिक शरीर मानने लगता है।
- अहंकार 2 दो प्रकार का होता है –
    1. स्थूल अहंकार – मैं पुरुष हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, मैं युवा हूँ।
    2. सूक्ष्म अहंकार – मैं करता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ।

(7-अ) विभिन्न लोकों तथा आवरणों के रूप में ब्रह्माण्ड की मूल संरचना का वर्णन कीजिये। इन लोकों में पृथ्वी किस प्रकार स्थित है?

उत्तर – हमारा ब्रह्मांड अत्यंत विशाल है और अण्डे के आकार का है। इसलिए इसे 'ब्रह्माण्ड' कहा जाता है।

आध्यात्मिक जगत में भगवान श्रीकृष्ण अपने कुछ रूपों की एक श्रृंखला में अपना विस्तार करने के बाद महाविष्णु का अद्भुत विशाल रूप धारण करते हैं।

- महाविष्णु चिन्मय आकाश के एक कोने में स्थित कारण सागर में शयन करते हैं।
- श्वास छोड़ते समय उनके रोमछिद्रों से असंख्य ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं। इससे हम अनुमान ही लगा सकते हैं कि महाविष्णु कितने विशाल है।

- ये ब्रह्माण्ड बड़े होकर बाहर बड़े होने लगते हैं और करण सागर में छोटे बुलबुलों के समान दिखाई देते हैं।
- सृजन की प्रक्रिया प्रत्येक ब्रह्माण्ड में होती है और प्रत्येक ब्रह्माण्ड की अवधि महाविष्णु की श्वाश तक ही सीमित होती है।
- ब्रह्माण्ड के ऊपर सात तत्त्वों से बनी सात परतें होती हैं और प्रत्येक परत अपने से निचली परत से दस गुना अधिक मोटी होती है।
- इस 'अण्डे' के भीतर 14 लोक होते हैं। हमारे लोक को भूलोक कहा जाता है और यह अन्य लोकों के बीच में स्थित है।
- भूलोक के ऊपर 6 लोक हैं- भुवर्लोक, स्वर्गलोक,महर्लोक, जनलोक,तपलोक तथा सर्वोच्च लोक सत्यलोक। प्रत्येक लोक में अनेकानेक ग्रह होते हैं और इन सबमें विभिन्न प्रकार के प्राणी रहते हैं।
- भूलोक के नीचे सात सात निम्न लोक हैं- अतल,वितल,सुतल,तलातल,महातल,रसातल तथा पाताल।
- इन समस्त 14 लोकों में जन्म और मृत्यु है।

(8-अ) जीवन की विभिन्न योनियों का वर्णन कीजिये। ये क्या हैं और कितनी हैं? मनुष्य योनि से नीचे की योनियों में जीवात्मा किस प्रकार यात्रा करता है?

उत्तर - पद्म पुराण के अनुसार भौतिक जगत में ८४ लाख योनियाँ हैं :

जलजा नवलक्षाणि स्थावरा लक्षविंशतिः।
कृमयो रुद्रसंख्या: पक्षिणां दश लक्षाणम्।
तिर्यंश्चत्वारिंशत् पशव: चतुलक्षाणि मानुषा:।।
(पद्म पुराण)

योनियाँ	
जलचर	९ लाख योनियाँ
पेड़-पौधे	२० लाख योनियाँ
कीट-पतंगे, रेंगने वाले जन्तु	११ लाख योनियाँ
पक्षी	१० लाख योनियाँ
पशु	३० लाख योनियाँ
मनुष्य	४ लाख योनियाँ
कुल	८४ लाख योनियाँ

ये योनियाँ विभिन्न स्तर की चेतना पर आधारित हैं।

- यहाँ तक कि मनुष्यों में भी चार लाख योनियाँ हैं (चेतना के स्तर पर आधारित)।

(9-अ) मृत्यु के समय मनुष्य किस प्रकार अपना शरीर बदलता है?

उत्तर - भगवद गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि आत्मा अजर-अमर है और यह शरीर को उसी प्रकार बदलती है जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है।
भगवद गीता के अध्याय 2, श्लोक 22 में कहा गया है:
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि
अन्यानि संयाति नवानि देही।। 2.22।।
अर्थात, "जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्र धारण करता है, वैसे ही आत्मा पुराने और जीर्ण-शीर्ण शरीरों को छोड़कर नए शरीर धारण करती है।"

- आत्मा की यह यात्रा कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों पर आधारित है। आत्मा अपने पिछले कर्मों के अनुसार नया शरीर धारण करती है, जो उसे अगले जीवन के लिए प्रदान किया जाता है। इस प्रक्रिया को 'पुनर्जन्म' कहते हैं।
- मृत्यु के समय, यदि व्यक्ति ने अपने जीवन में कृष्ण भक्ति और धर्म के मार्ग का अनुसरण किया है, तो उसे परमात्मा के निकट जाने और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर मिलता है। अन्यथा, आत्मा संसार में जन्म-मृत्यु के चक्र में फंसी रहती है।

(10-अ) कर्म समझाइये। कर्म का नियम किस प्रकार जीवात्मा को प्रभावित करता है?

उत्तर - कर्म एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है 'कार्य' या 'कर्म'।कर्म के नियम के अनुसार जीवात्मा द्वारा की गई प्रत्येक क्रिया की समान प्रतिक्रिया होती है। यह सूक्ष्म नियम प्रत्येक जीवात्मा पर लागू हो उन्हें नियंत्रित करता है।

- कर्म के नियम कारण एवं प्रभाव अथवा क्रिया- प्रतिक्रिया के नियम हैं। अर्थात् हमारे प्रत्येक कार्य का कोई न कोई प्रभाव (फल) अवश्य होता है और हमारे साथ जो भी हो रहा है,उसका भूतकाल में अवश्य कोई कारण होगा।
- इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि हमारे वर्तमान सुख -दुःख हमारे पूर्वकर्मों के फल हैं और हमारे वर्तमान कार्य हमारे भावी सुख -दुःख का निर्माण करेंगे।
- व्यक्ति कितना भी बड़ा या छोटा क्यों न हो, इन नियमों से कोई बच नहीं सकता। और यह कहकर भी कोई इनसे बच नहीं सकता कि उसे नियमों की जानकारी नहीं थी।
- कर्म का नियम कहता है कि व्यक्ति के अच्छे या बुरे कार्य उसके वर्तमान और भविष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं।

तीन प्रकार के कर्म-

- सञ्चित कर्म- यह वह कर्म है जो हमारे पिछले जन्मों के कार्यों का संचित फल है।
- प्रारब्ध कर्म- यह वह कर्म है जिसका फल हमें इस जीवन में भोगना पड़ता है।
- क्रियमाण कर्म- यह वह कर्म है जो हम वर्तमान में कर रहे हैं और जिसका फल हमें भविष्य में मिलेगा।

जीवात्मा पर प्रभाव-

- अच्छे कर्म- यदि व्यक्ति धर्म, सत्य और परोपकार के कार्य करता है, तो उसे अच्छे परिणाम मिलते हैं जैसे सुख, शांति और समृद्धि।
- बुरे कर्म- यदि व्यक्ति अधर्म, झूठ और स्वार्थ के कार्य करता है, तो उसे बुरे परिणाम मिलते हैं जैसे दुःख, अशांति और विपत्तियाँ।

मूल सिद्वांत यही है कि कर्म का नियम व्यक्ति को उसके अच्छे और बुरे कार्यों के फल भुगतने के लिए बाध्य करता है। लेकिन भगवान कृष्ण की भक्ति से ही व्यक्ति इस बंधन से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त कर सकता है।

(11-अ) जब व्यक्ति पुण्य और पाप कर्म करता है तो उसके क्या परिणाम होते हैं? पुण्य और पाप कर्मों के तथा उनके परिणामों के कुछ उदाहरण दीजिये।

उत्तर - पुण्य कर्म उदाहरण और उनके परिणाम -

- पुण्य कर्मों के उदाहरण हैं, जैसे ग़रीबों को दान देना,अंधों की सहायता करना,निःशुल्क दवाइयाँ बाँटना,कुँए खुदवाना,वृक्ष लगवाना,भूखे को भोजन खिलाना इत्यादि।
- इन पुण्य कार्यों को करने से व्यक्ति भावी जीवन में सुख,सम्पत्ति,सौंदर्य,उच्च कुल में जन्म,स्वास्थ्य और यहाँ तक कि स्वर्ग में भी शरीर प्राप्त कर सकता है।

पाप कर्म के उदाहरण और उनके परिणाम –

- उदाहरण – चोरी,हत्या,नशा, मांसाहार आदि पापकर्म हैं।
- पाप करने से व्यक्ति दुःखी,निर्धनता,रोग,निम्न जन्म,कुरूप शरीर इत्यादि प्राप्त करता है।

(12-अ) देवता क्या हैं, समझाइये। किन्ही पाँच देवताओं के नाम, गुण तथा कार्यों के बारे में बतलाइये।

उत्तर –

- देवतागण ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार कार्यों को करने के लिए नियुक्त किये गए अधिकारियों के समान हैं। वे मन्त्रियों के समान होते हैं, जो विशेष मन्त्रालय का कार्यभार सँभालते हैं। वे तब तक उस पद पर बने रहते हैं, जब तक प्रधानमंत्री (श्रीकृष्ण) का विश्वास उन्हें प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार कुल ३३ कोटि देवता हैं।
- प्रत्येक ब्रह्माण्ड में देवताओं का अलग समूह कार्य करता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो सृष्टि में लाखों ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य आदि देवता हैं। वे श्रीभगवान् के निर्देशानुसार अपने निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करते हैं।

पाँच देवताओं के नाम और उनके कार्य –

1. ब्रह्मा – ब्रह्मांड का सृजन
2. शिव - ब्रह्मांड का संहार
3. इन्द्र – देवताओं के राजा तथा वर्षा के देवता
4. वरुण -समुद्र,नदियों,सरोवरों आदि समस्त जलाशयों के देवता।
5. सूर्य- प्रकाश एवं ऊष्मा प्रदान करने वाले।

- ये देवता स्वर्गलोकों में निवास करते हैं और दीर्घकाल तक स्वर्गीय सुखों का भोग करते हैं। शास्त्रों के अनुसार ब्रह्माजी के 100 वर्ष पृथ्वी के 311 ख़रब चार अरब वर्षों के समान हैं।
- देवतागण श्रीभगवान के भक्त हैं और ब्रह्मांड में श्रीभगवान के प्रतिनिधि हैं। श्रीभगवान सदैव देवताओं के प्रति दयालु रहते हैं और जब भी असुर,देवताओं को तंग करते हैं श्रीभगवान देवताओं की रक्षा हेतु अवतरित होते हैं।

(13-अ) वर्णाश्रम क्या है? प्रत्येक वर्ण और आश्रम के क्या कर्तव्य हैं? आपको अपनी इसमें स्वाभविक स्थिति क्या लगती है? और क्यों? हरेक वर्ण का सही आश्रम क्या है? आपको आश्रम में अपनी कौन-सी-स्थिति सही लगती है?

उत्तर – वर्णाश्रम धर्म का अर्थ है चार वर्णों (सामाजिक व्यवस्था) और चार आश्रमों (जीवन के चरणों) के अनुसार कर्तव्यों का पालन करना। आध्यात्मिक व्यवस्था ब्रह्मचारी (विद्यार्थी जीवन), गृहस्थ (गृहस्थ जीवन), वानप्रस्थ (सेवानिवृत्त जीवन), और संन्यास (संन्यास) से मिलकर बनती है। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण (पुरोहित और विद्वान), क्षत्रिय (योद्धा), वैश्य (व्यापारी और कृषक), और शूद्र (श्रमिक) शामिल हैं।

इस व्यवस्था में नियम इतने अच्छे तरीके से बनाए गए हैं कि भले ही किसी व्यक्ति में भौतिक जीवन का आनंद लेने की प्रवृत्ति हो, उसे धीरे-धीरे मोक्ष और अंततः भगवान की ओर मार्गदर्शित किया जाता है। प्रत्येक वर्ण की अपनी विशेष जिम्मेदारियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों के लिए पूर्ण अहिंसा आवश्यक है, जिसमें पशु बलि से परहेज शामिल है, लेकिन यह क्षत्रियों के लिए नहीं है, जिनका कर्तव्य समाज की रक्षा करना है, जिसमें कभी-कभी हिंसा का सहारा लेना पड़ता है। इसी प्रकार, गृहस्थों के लिए धन कमाना और संतान उत्पन्न करना आवश्यक है, जबकि संन्यासियों को धन और महिलाओं से दूर रहकर आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करनी चाहिए।

इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य सनातन धर्म के आधार पर आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करना है। प्रत्येक वर्ण समाज में योगदान करता है: ब्राह्मण आध्यात्मिक दृष्टि और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, क्षत्रिय समाज की रक्षा करते हैं, वैश्य भौतिक पोषण का जिम्मा उठाते हैं, और शूद्र अन्य सभी वर्गों का समर्थन करते हैं।

जीवन के चार आश्रम (चरण) इस प्रकार हैं:

1. ब्रह्मचारी: विद्यार्थी जीवन, जहाँ व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करता है, गुरु के आश्रम में रहता है, और कड़े अनुशासन का पालन करता है। शिक्षा पूरी होने के बाद, व्यक्ति विवाह कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता है या जीवन भर ब्रह्मचारी रह सकता है।
2. गृहस्थ: गृहस्थ जीवन, जहाँ व्यक्ति पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाता है।
3. वानप्रस्थ: 50 वर्ष की आयु के बाद, व्यक्ति को सेवानिवृत्त होकर अपने सबसे बड़े बेटे को जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए और घर से दूर रहकर आध्यात्मिक जीवन की ओर बढ़ना चाहिए।
4. संन्यास: संन्यासी जीवन, जो पूरी तरह से भक्ति और आध्यात्मिक साधना पर केंद्रित होता है।

(14-अ) ब्रह्माजी के जीवन काल के अनुसार काल की वैदिक विचार धारा के विषय में कुछ बतलाइये। हम किस तरह से ब्रह्मा का एक दिन अपने समय के हिसाब से बतायेगें? युगों को और उनकी अवधि को समझाइये और प्रत्येक युग में उस आध्यात्मिक विधि का वर्णन कीजिये जो उस युग के लिये है।?

उत्तर – ब्रह्मा जी जीवन अवधि –

एक पूरा दिन	= 864 करोड़ वर्ष
ब्रह्मा जी का एक वर्ष	= 864 x 360 करोड़ वर्ष
ब्रह्मा जी की जीवन अवधि	= 864 x 360 x 100 वर्ष
	= 31104000 करोड़ वर्ष = 3110 खरब 40 अरब वर्ष

युगों की अवधि –

कलियुग	= 4.32 लाख वर्ष
द्वापरयुग	= 8.64 लाख वर्ष (कलियुग का दो गुना)
त्रेतायुग	= 12.96 लाख वर्ष (कलियुग का तीन गुना)
सत्ययुग	= 17.28 लाख वर्ष (कलियुग का चार गुना)
चतुर्युग अथवा दिव्ययुग	= 43.20 लाख वर्ष (कलियुग का दस गुना)

प्रत्येक युग में आध्यात्मिक विधि –

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखेः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

अनुवाद : "सत्ययुग में जो परिणाम भगवान् श्रीविष्णु पर ध्यान करने से प्राप्त होते थे, त्रेतायुग में यज्ञ सम्पन्न करने से होते थे तथा द्वापरयुग में श्रीभगवान् के चरणकमलों की सेवा से प्राप्त होते थे, कलियुग में वही परिणाम केवल हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन से प्राप्त हो जाते हैं।"

(श्रीमद्भागवतम् 12.3.52)

कलियुग	संकीर्तन
द्वापरयुग	अर्चाविग्रहों की सेवा
त्रेतायुग	यज्ञ
सत्ययुग	ध्यान

(15-अ) कलियुग के विशेष लक्षण क्या हैं? कलियुग नामका व्यक्ति कौन है और श्रीमद्भागवतम् उसके विषय में क्या बताती है? कलियुग के क्या गुण तथा दोष हैं?

उत्तर - कलियुग को कलह (झगड़ा) और दंभ (पाखंड) का युग कहा गया है। इस युग में धोखाधड़ी, झूठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, अवसाद, शोक, भ्रम, भय और गरीबी का प्राधान्य होता है। यह अज्ञान का युग है, और कालीयुग के दुष्प्रभावों के कारण मनुष्य छोटी सोच वाला, दुर्भाग्यशाली, कामुक और

गरीब हो जाता है। स्त्रियाँ अविवेकपूर्ण होकर एक पुरुष से दूसरे पुरुष के पास भटकने लगती हैं। जैसे-जैसे कलियुग आगे बढ़ता है, मनुष्यों की सभी अच्छी आदतें घटती जाती हैं और अशुद्ध आदतें बढ़ती जाती हैं। वेदों के नियमों को छोड़कर नास्तिक धर्म के सिद्धांत हावी हो जाते हैं। राजा लुटेरों के समान हो जाते हैं, लोग निम्न कार्यों में लिप्त हो जाते हैं, और सभी सामाजिक वर्ग शूद्रों के समान हो जाते हैं। गायें बकरियों की तरह हो जाती हैं, सभी आध्यात्मिक आश्रम भौतिक घरों के समान हो जाते हैं, और पारिवारिक संबंध केवल विवाह तक ही सीमित रह जाते हैं।

कलि के व्यक्तित्व को जब महाराज परीक्षित के सामने प्रस्तुत किया गया, तो उन्होंने तुरंत ही उसे अपने राज्य में प्रवेश नहीं करने दिया। लेकिन बहुत अनुरोध के बाद, उसे उन जगहों पर रहने की अनुमति दी गई जहाँ जुआ, मांसाहार, अवैध संबंध और नशा हो रहा हो। उसे सोने के स्थान पर भी आराम करने की अनुमति दी गई।

श्रीमद्भागवतम में वर्णन है कि जब कलियुग का अंत निकट होगा, तो परमेश्वर स्वयं कल्कि अवतार के रूप में अवतरित होंगे। वे शंभल नामक गाँव में एक महान ब्राह्मण विष्णुयशा के घर में जन्म लेंगे और कल्कि नाम धारण करेंगे। वे अपने घोड़े देवदत्त पर सवार होकर, तलवार लेकर पृथ्वी पर विचरण करेंगे और राजा के रूप में छुपे हुए लुटेरों का संहार करेंगे।

भगवान चैतन्य महाप्रभु को युगावतार कहा जाता है, जो कलियुग के लिए सुनहरे अवतार हैं और संकीर्तन आंदोलन के संस्थापक हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने वैष्णव गीत "उदिलो अरुणा पूरबा भागे" में लिखते हैं: "द्विज मणि गौरा अमानी जागे, भक्त समूह लइया साथे, गेका नगरा ब्रजे।" इसका अर्थ है कि जब पूरब में सूर्योदय हुआ, तो द्विजों के रत्न, गौरसुंदर ने जागकर अपने भक्तों को साथ लिया और मृदंग और कर्ताल के साथ गाँव-गाँव घूमने लगे।

कलीयुग के लाभों का वर्णन श्रीमद्भागवत में इस प्रकार किया गया है: "कलेर दोष-निधे राजन्न अस्ति ह्येको महान गुणः कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्त-संगः परं व्रजेत्।"कलियुग भले ही दोषों का समुद्र हो, जैसे धोखा, झूठ, आलस्य, हिंसा, अवसाद आदि, लेकिन इस युग की एक महान विशेषता है: केवल हरि नाम का कीर्तन करने से मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त कर सकता है। जैसे एक शक्तिशाली राजा असंख्य चोरों को समाप्त कर सकता है, वैसे ही एक अद्वितीय आध्यात्मिक गुण इस युग की समस्त अशुद्धियों को नष्ट कर सकता है। हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने का महत्व अनंत है:"हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।"

(ब) आत्मा तथा परमात्मा से सम्बंधित प्रश्नः-

(1-ब) आत्मा के जितने लक्षण आप जानते हैं, उन्हें लिखिये। समझाइये कि ये लक्षण भौतिक शरीर के लक्षणों से किस प्रकार भिन्न हैं।

उत्तर –

- आत्मा सनातन है
- आत्मा अविनाशी है
- आत्मा का अस्तित्त्व सदैव रहता है।
- आत्मा का आकार है
- आत्मा आश्चर्यजनक है

आत्मा और भौतिक शरीर में तुलना -

आत्मा	भौतिक शरीर
सत् (शाश्वत)	असत् (निरन्तर परिवर्तनशील)
चित् (चेतन, ज्ञानमय)	अचित् (अचेतन, अज्ञानमय)
आनन्दमय	निरानन्द (कष्टों से भरा)
आत्मा का रूप है	शरीर को रूप दिया जाता है
निजी अस्तित्व है	निजी अस्तित्व नहीं है
आध्यात्मिक जगत से सम्बन्धित है	भौतिक जगत से सम्बन्धित है

(2-ब) भगवद्गीता के श्लोक 'देहिनोऽस्मिन्यथा देहे...' जिस प्रकार बद्ध जीवात्मा इस शरीर में निरन्तर अग्रसर होता रहता है, इत्यादि का अभिप्राय पूरी तरह से समझाइये।

उत्तर –

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। 2.13।।

यह श्लोक हमें सिखाता है कि आत्मा अमर है और शरीर बदलते रहते हैं। यह समझ आत्मा के स्थायित्व और शारीरिक परिवर्तनों के प्रति एक धैर्यपूर्ण दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करती है।
श्रील प्रभुपाद उक्त श्लोक के तात्पर्य में कहते हैं –
“प्रत्येक जीव एक व्यष्टि आत्मा है।वह प्रतिक्षण अपना शरीर बदलता रहता है – कभी बालक के रूप में,कभी युवा तथा कभी वृद्ध पुरुष के रूप में।तो भी आत्मा वही रहता है,उसमे कोई परिवर्तन नहीं होता”।

(3-ब) ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो और उपद्रष्टानुमन्ता च, इन श्लोकों के सम्बन्ध में परमात्मा का क्या कार्य है? यदि आप संस्कृत श्लोकों को नहीं जानते हैं तो परमात्मा के विषय में समझाते हुये उत्तर दीजिये ।

उत्तर –

- परमात्मा का सर्वप्रथम कार्य है वे सभी जीवात्माओं के हृदय में निवास करते हैं।
- कृष्ण अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में हृदय में स्थित होकर जीव को निर्देश देते हैं।
- शरीर परिवर्तन होते हैं जीव अपने विगत कर्मों को भूल जाता है, लेकिन जो परमात्मा भूत,वर्तमान तथा भविष्य के ज्ञाता है, वे जीव के समस्त कार्यों के साक्षी रहते हैं।
- जीवों के सभी कार्यों का संचालन परमात्मा द्वारा ही होता है।
- परमात्मा के आदेश से भौतिक प्रकृति एक विशेष प्रकार के जीव के लिये एक विशेष शरीर का निर्माण करती है, जिससे वह अपनी पूर्व इच्छाओं के अनुसार कर्म कर सके।

(4-ब) किस तरह से परमात्मा प्रत्येक बद्ध जीव के कर्म को नियन्त्रित करता है?

उत्तर - परमात्मा बद्ध जीव के कर्म को नियंत्रित करते हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि बद्ध जीव अपने कर्म करने में स्वतंत्र ही नहीं है या वह परतंत्र हो गया।

जैसे – बिजली से संचालित होने वाले यंत्र अनेक तरह के होते हैं। एक ही बिजली से संचालित होने पर भी किसी यंत्र में बर्फ जम जाती है और किसी यंत्र में अग्नि जल जाती है अर्थात् उनमें एक- दूसरे से बिलकुल विरुद्ध काम होता है। परंतु बिजली का यह आग्रह नहीं रहता है कि मैं तो केवल बर्फ ही जमाऊँगी अथवा केवल अग्नि ही जलाऊँगी। यंत्रों का भी ऐसा आग्रह नहीं रहता कि हम तो केवल बर्फ ही जमायेंगे अथवा केवल अग्नि ही जलायेंगे,प्रत्युत यंत्र बनाने वाले कारीगर ने यंत्रों को जैसा बना दिया है, उसके अनुसार उनमें स्वाभाविक ही बर्फ जमती है और अग्नि जलती है। ऐसे ही मनुष्य,पशु,पक्षी,देवता,यक्ष,राक्षस आदि जीतने भी प्राणी हैं,सब शरीररूपी यंत्रों पर चढ़े हुए हैं और उन सभी को परमात्मा नियंत्रित करते हैं।उन अलग – अलग शरीरों में भी जिस शरीर में जैसा स्वभाव है, उस स्वभाव के अनुसार वे ईश्वर से प्रेरणा पाते हैं और कार्य करते हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे बिजली यंत्र के स्वभाव के अनुसार ही उसका संचालन करती है,ऐसे ही परमात्मा प्राणी के शरीर में स्थित स्वभाव के अनुसार उसका संचालन करते हैं। जैसा स्वभाव होगा,वैसे ही कर्म होंगे।इसमें एक बात विशेष ध्यान देने की है स्वभाव को सुधारने में और बिगाड़ने में सभी मनुष्य स्वतंत्र हैं।

श्रील प्रभुपाद गीता 18.61 के तात्पर्य में लिखते हैं-

> "अत्यधिक तेज मोटरकार में बैठा व्यक्ति कम तेज कार में बैठे व्यक्ति से अधिक तेज जाता है,भले ही जीव अर्थात् चालक एक ही क्यों न हो। इसी प्रकार परमात्मा के आदेश से भौतिक भौतिक प्रकृति एक विशेष प्रकार के जीव के लिये एक विशेष शरीर का निर्माण करती है, जिससे वह अपनी पूर्व इच्छाओं के अनुसार कर्म कर सके।जीव स्वतंत्र नहीं होता। मनुष्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि वह भगवान से स्वतंत्र है। व्यक्ति तो सदैव भगवान के नियंत्रण में रहता है। अतएव उसका कर्तव्य है कि वह शरणागत हो"।

(5-ब) एक वृक्ष पर दो पक्षी हैं, इस उदाहरण को बताइये तथा समझाइये।

उत्तर - "एक वृक्ष पर दो पक्षी" एक उपनिषद् का अंश है, जो जीवन और आत्मा के बीच के संबंध को दर्शाने के लिए एक रूपक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह मुंडक उपनिषद् और श्वेताश्वतर उपनिषद् में पाया जाता है।

इस रूपक में, एक ही वृक्ष पर दो पक्षी बैठे होते हैं। एक पक्षी वृक्ष के फल खा रहा होता है, जबकि दूसरा पक्षी बस शांत बैठा उसे देख रहा होता है। इस रूपक में:

1. वृक्ष - संसार (भौतिक जगत) को दर्शाता है।
2. फल खाने वाला पक्षी - जीवात्मा को दर्शाता है, जो कर्म, फल और संसारिक भोग में लिप्त होता है।
3. दूसरा पक्षी - परमात्मा (सर्वोच्च आत्मा या साक्षी रूप में) को दर्शाता है, जो निर्लेप और निष्क्रिय है, केवल साक्षी भाव में स्थित है और संसार के घटनाक्रमों को देखता रहता है।

इस कहानी के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि हमारी आत्मा (जीवात्मा) इस संसार में कर्म और भोग में लिप्त रहती है, लेकिन परमात्मा इन सबसे परे, मात्र साक्षी रूप में रहते हैं।

(स) कृष्ण तथा परम सत्य के बारे में प्रश्नः-

(1-स) कृष्ण कौन हैं? उन्हें क्यों ईश्वर, पुरुष, भगवान्, आदिदेव कहा गया है? कृष्ण की अन्य विशेषताओं के बारे में बताइये? अहं सर्वस्य प्रभवो इस श्लोक के सम्बन्ध में प्रयास कीजिये और उत्तर दीजिये।

उत्तर – कृष्ण का अर्थ है "सर्व आकर्षक"। श्रीभगवान के इस नाम में उनके अन्य सब नाम एवं श्रीभगवान से जुड़ी समस्त धारणाओं एवं विचारों का समावेश है। श्रीमद्भागवतम में भगवान श्रीकृष्ण को ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान कहा गया है। उनकी देह सत्-चित्-आनंद (शाश्वत ज्ञान एवं आनंद के भण्डार) से बनी है। उनके शरीर का रंग वर्षा ऋतु के मेघों के समान श्यामल है। उनके सिर पर मोरपंख सजा है और कण्ठ में वैजयंती माला है। उनकी बांसुरी का स्वर इतना मधुर है कि सुनने वाला मन्त्र मुग्ध हो जाता है। ध्यानपूर्वक उनकी बांसुरी का अलौकिक स्वर सुनते हुए मृग उन्मत्त हो जाते हैं, और अन्य पशु, वृक्ष एवं पौधे जड़ बन जाते हैं। यहाँ तक कि देवताओं की पत्नियाँ के चित्त भी विचलित हो जाते हैं। मन्त्र मुग्ध होकर गायें अपने कानों को फैलाकर बांसुरी से बहते अमृत का पान करने लगती हैं। वृन्दावन की गोपियाँ अपने सारे कार्य छोड़ श्रीकृष्ण की ओर दौड़ जाती हैं। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण अपने गोलोकधाम में अपने भक्तों के साथ प्रेमभरी लीलाएँ करते हैं।

जब भगवान श्रीकृष्ण अपने सनातन पार्षदों के साथ वृन्दावन की पवित्र भूमि पर अवतरित होते हैं, तो यहाँ वे ये सब लीलाएँ करते हैं।

- श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान हैं। हम ऐसा क्यों कहते हैं? क्योंकि वे उपनिषद् समेत कसौटियों पर खरे उतरते हैं और भगवद्गीता एवं अन्य वैदिक शास्त्रों में इसके भरपूर प्रमाण हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

(क) श्रीकृष्ण प्रत्येक वस्तु के स्त्रोत हैं-

श्रीभगवान की इच्छा के बिना घास की एक पत्ती तक नहीं हिलती। श्रीकृष्ण प्रत्येक वस्तु के स्त्रोत हैं। वे घोषणा करते हैं:
अहं सर्वस्य प्रभवो मत: सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विता।।
(भागवद्गीता 10.8)
अनुवाद: "मैं समस्त आध्यात्मिक एवं भौतिक जगतों का स्त्रोत हूं। प्रत्येक वस्तु मुझसे ही उत्पन्न होती है। जो बुद्धिमान मनुष्य इस तथ्य को तात्त्विक रूप से जानता है, वह मेरी भक्ति में संलग्न होता है और अंत:करण से मेरी पूजा करता है।"

सृष्टि के गौण रचियता ब्रह्माजी ब्रह्मसंहिता में कहते हैं:
ईश्वर: परम: कृष्ण: सच्चिदानंद विग्रह:
अनादिरादिरगोविंद: सर्वकारणकारणम्।।
(ब्रह्मसंहिता, श्लोक 1)

अनुवाद: "गोविंद नाम से विख्यात श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं। उनकी शाश्वत देह पूर्ण, चिन्मय एवं आनंदमय है। वे प्रत्येक वस्तु के स्रोत हैं और उनका कोई स्रोत नहीं है। वे ही प्रत्येक कारण के मूल कारण हैं।"

(ख) श्रीकृष्ण सर्वोच्च नियंता हैं -

प्रत्येक व्यक्ति भौतिक प्रकृति द्वारा नियंत्रित है। निस्सहाय रूप से प्रत्येक प्राणी जन्म लेता है, अपनी भूमिका निभाता है और अपरिहार्य रूप से नष्ट हो जाता है। परंतु श्रीकृष्ण भौतिक प्रकृति के भी नियंता हैं। भागवद्गीता में वे कहते हैं:

मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।

"हे कौन्तेय! मेरी देखरेख में कार्य करते हुए यह भौतिक प्रकृति समस्त चराचर प्राणियों का उत्पन्न करती है। इसके नियंत्रण में ही इस सृष्टि का बार-बार सृजन एवं संहार होता है।"

(ग) श्रीकृष्ण प्रत्येक वस्तु के सर्वोच्च स्वामी हैं -

प्रत्येक वस्तु भगवान श्रीकृष्ण की है और उनके भोग हेतु है। हमारा कुछ भी नहीं है, परन्तु जब हम भगवान श्रीकृष्ण की वस्तुओं को भक्तिभाव द्वारा उन्हें अर्पण करते हैं, तो वे प्रसन्न होते हैं। जब एक बालक पिता द्वारा दिए गए जेब खर्च से उपहार लाकर पिता को देता है, तो पिता प्रसन्न होते हैं, क्योंकि यह पिता के प्रति बालक के प्रेम को दर्शाता है। भगवान श्रीकृष्ण भगवद्गीता में शान्तिस्वरूप हैं। भगवान श्रीकृष्ण के स्वामित्व को स्वीकार करके प्रत्येक व्यक्ति सुखी एवं शांत हो सकता है।

(2-स) श्लोक 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' जिस तरह वे मेरे शरणागत होते हैं उसी तरह मैं उन्हें भजता हूँ, का तात्पर्य बताइये।

उत्तर – गीता (4.11) में भगवान श्रीकृष्ण के स्पष्ट वचन हैं – जिसका तात्पर्य है – जो भक्त जिस प्रकार से मेरा आश्रय लेते हैं,मैं उन भक्तों की उसी प्रकार की सेवा करके उन्हें सम्मानित करता हूँ। उक्त श्लोक में श्रीभगवान ने 'भजामि' शब्द का प्रयोग किया है जिसका आशय है श्रीकृष्ण अपने भक्तों के प्रति अपनी सेवा तथा सम्मान की भावना प्रकट करते हैं।

(3-स) जीवन का अन्तिम लक्ष्य या सर्वोच्च पूर्णता क्या है? उसे किस तरह से प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर – जीवन का चरम लक्ष्य भगवद्प्रेम की प्राप्ति है। जिसे प्रयोजन भी कहते हैं, दूसरे शब्दों में श्रीभगवान के धाम में प्रवेश करके उनकी शाश्वत,आनन्दमयी एवं प्रेममय लीलाओं में भाग लेना।यही जीवन की सर्वोच्च लक्ष्य एवं पूर्णता है। इससे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी प्राप्य नहीं है। और लक्ष्य को केवल श्रीभगवान की विशुद्ध भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

(4-स) कृष्ण और विष्णु के व्यक्तिगत रूपों के क्या लक्षण हैं?

उत्तर –

- आध्यात्मिक जगत वैकुण्ठ में असीमित आध्यात्मिक लोक हैं, जिनका आकार कल्पना से परे अत्यंत विशाल है। उन्हें वैकुण्ठलोक कहा जाता है।
- उनमें गोलोक वृन्दावन अथवा कृष्णलोक सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण है, जहाँ श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हुए अपने द्विभुज रूप में निवास करते हैं।
- श्रीकृष्ण असंख्य चतुर्भुज नारायण रूप में अपना विस्तार करते हैं और उनमें से प्रत्येक नारायण रूप प्रत्येक वैकुण्ठलोक में निवास करता है।
- जहाँ तक भौतिक सृष्टि से व्यवहार का प्रश्न आता है, आदि भगवान श्रीकृष्ण स्वयं प्रत्यक्ष रूप से यह कार्य नहीं करते।
- भौतिक सृष्टि के साथ व्यवहार हेतु वे विभिन्न श्रीविष्णु रूपों में अपना विस्तार करते हैं। ये श्रीविष्णु रूप भौतिक सृष्टि का कार्यभार देखते हैं।
- वस्तुतः ये श्रीविष्णु रूप श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं और एक दृष्टि से श्रीकृष्ण के "कार्यालय" वाले रूप हैं।
- सृष्टि का सृजन, पालन एवं संहार "आधिकारिक" कार्य के समान है और उन्हें श्रीकृष्ण अपने श्रीविष्णु रूपों के माध्यम से सम्पन्न करते हैं।

(5-स) भगवान् के दश अवतारों के लक्षण यथा सम्भव अधिक से अधिक समझाइये। भगवान् के कुल कितने अवतार हैं? भगवान् के अवतारों के विभिन्न प्रकारों को समझाइये।

उत्तर – भगवान श्रीकृष्ण के प्रमुख दश अवतार हैं –

1. मत्स्य
2. कूर्म
3. वराह
4. नरसिंह देव
5. वामनदेव
6. परशुराम
7. श्रीरामचन्द्र
8. बलराम
9. बुद्ध
10. कल्कि

- समय – समय श्रीभगवान के उपरोक्त अवतार वैकुण्ठ से इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं। तब उन्हें अवतारों का नाम दिया जाता है।
- हमें समझना होगा कि ये अवतार पूर्णतः चिन्मय होते हैं और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं।मूर्ख अज्ञानी लोग सदैव श्रीभगवान के इन अवतारों को इस संसार के साधारण व्यक्ति मान बैठते हैं, क्योंकि कई बार ये अवतार इस प्रकार कार्य करते हैं मानो वे इसी संसार के लोगों जैसे हैं।

श्रीभगवान के अवतारों के प्रकार –

भगवान श्रीकृष्ण के 6 प्रकार के अवतार होतें हैं –

1. पुरुषावतार
2. गुणावतार
3. लीलावतार
4. शक्त्यावेश अवतार
5. मन्वन्तर अवतार
6. युगावतार

(6-स) पञ्चतत्त्व का वर्णन कीजिये। वे कौन हैं और वे कृष्णलीला में क्या हैं?

उत्तर – पंचतत्व –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द

पंचतत्व	कृष्ण लीला
श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु	स्वयं भगवान श्रीकृष्ण
श्रीनित्यानन्द	श्रीबलराम
श्रीअद्वैत आचार्य	महाविष्णु तथा सदाशिव
श्रीगदाधर पंडित	श्रीमति राधारानी
श्रीवास पंडित	श्रीनारद मुनि

(7-स) भगवान् के वास्तविक अवतार के लक्षण क्या हैं? तथा उस बदमाश के क्या लक्षण हैं जो अपने आपको भगवान् कहता है? हम उसे किस तरह से चुनौती दे सकते हैं कि वह सिद्ध करे कि वह भगवान् है?

उत्तर –

- आजकल अनेक आडंबरी लोग श्रीभगवान का अवतार होने का दावा करते हैं और आध्यात्मिक सत्य से अनजान अनेक अबोध लोगों को ठगते हैं। इससे समाज में अनेक उत्पात उठ खड़े हुए हैं। इसलिए लोगों को ज्ञान होना चाहिए कि असली अवतार को कैसे पहचाना जाए। अवतार में निम्नलिखित लक्षण होने आवश्यक हैं, अन्यथा हमें उस व्यक्ति को केवल आडंबरी समझना चाहिए।
    1. शास्त्रों में उसकी भविष्यवाणी होनी चाहिये। (उदाहरण – कलियुग के अंत में भगवान कल्कि की भविष्यवाणी की गई है।
    2. उसे अपने विराट रूप का दर्शन करवाना चाहिए। (जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को करवाया थ।)
    3. उसे सामान्य मनुष्य के लिए असंभव असाधारण कार्य करने चाहिए। (जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर किया)
    4. उसका कुछ विशिष्ट ध्येय एवं संदेश होना चाहिए। (उदाहरण – श्रीचैतन्य महाप्रभु कलियुग के युगधर्म हरिनाम संकीर्तन की स्थापना हेतु आये)

5. उसके शरीर पर शास्त्रों में वर्णित कुछ विशेष चिह्न होने चाहिए। (उदाहरण के लिए, हथेली और पैरों के तलवों पर)

(8-स) परम सत्य की तीन अभिव्यक्तियों का वर्णन कीजिये और विशिष्ट यौगिक पद्धति का भी वर्णन कीजिये जिसके द्वारा प्रत्येक अभिव्यक्ति की अनुभूति की जा सकती है।

उत्तर - वेदिक शास्त्र के अनुसार परम सत्य के तीन पहलू हैं:-

1. उनका व्यक्तिगत रूप श्रीभगवान, जो प्रत्येक वस्त्र के स्त्रोत हैं तथा शाश्वत आनन्द एवं ज्ञान के भंडार हैं। वे श्रीकृष्ण नाम से जाने जाते हैं। उनके अनेक नाम हैं, जैसे नंदनंदन, गोपिजानवल्लभ, द्वारकाधीश इत्यादि।
2. परमात्मा, जो प्रत्येक जीवात्मा के हृदय में निवास करते हैं। वे जीवात्मा के समस्त कार्यों के साक्षी हैं और परम गति की ओर उसका मार्गदर्शन करते हैं।
3. निराकार ब्रह्म, यह भगवान श्रीकृष्ण के नियामय शरीर से आने वाली—अंगकान्ति है। श्रीभगवान में लीन होने के इच्छुक योगिजन श्रीभगवान के इसी निराकार पहलू पर ध्यान करते हैं।

श्रीमद्भागवत में श्रील सूत गोस्वामी इसकी पुष्टि करते हैं:

वदन्ति तत् त्वविधस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भागवत 1.2.11)

अनुवाद: "विद्वान अध्यात्मवादी अद्वय परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा एवं श्रीभगवान नाम से जानते हैं।"

- ज्ञानी मार्ग के उपासक – निराकार ब्रह्म का अनुभव करते हैं
- योगिजन – परमात्मा का अनुभव करते हैं
- भक्तियोगी – श्रीभगवान का अनुभव करते हैं।

(9-स) तीन साक्षात्कारों अर्थात् परमात्मा भगवान् या ब्रह्म में से कौन सर्वाधिक पूर्ण है? आज के लिये आत्मज्ञान का कौन सा मार्ग सर्वाधिक उपयुक्त है?

उत्तर - परम सत्य के ये तीनों पहलू एक साथ अस्तित्व में रहते हैं और इनमें कोई परस्पर विरोधाभास नहीं है। परन्तु परम सत्य का श्रीभगवान पहलू सर्वोच्च साक्षात्कार है।

इसे एक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है।

- सूर्य के तीन पहलू होते हैं - सूर्यप्रकाश, सूर्यलोक तथा सूर्य देवता।
- सूर्यप्रकाश (ब्रह्म), सूर्यलोक (परमात्मा), सूर्यदेव (भगवान)

इन तीनों का अस्तित्व एक साथ रहता है और एक दृष्टि से देखा जाए तो ये तीनों एक ही हैं। जैसे सूर्यकिरण सूर्यमंडल से आती है और सूर्यलोक में सूर्यदेव निवास करते हैं। हो सकता है हम सूर्यदेव

दिखाई न दें, परंतु यदि हम सूर्यलोक पर जाएँगे तो हम देख सकते हैं कि किस प्रकार सूर्यदेव, सूर्यलोक एवं सूर्यकिरण नियन्त्रित की जाती हैं।
इसी प्रकार यदि हमें श्रीभगवान दिखाई नहीं देते, तथापि परम सत्य सर्वत्र एवं सदा पहले उनके ऊपर ही आसीत है।

- निराकार ब्रह्म परम सत्य विवेक का ज्ञान का पहला सोपान है।
- यदि प्रगाढ़ करने पर साधक प्रत्येक जीवात्मा के हृदय में स्थिर परमात्मा को देखना लगता है।
- अंततः वह इस समझ पर पहुँचता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण ही ब्रह्म और परमानंद के स्त्रोत हैं।

जिस प्रकार सूर्य को केवल सूर्य की किरणें मान लेना ग़लत नहीं केवल अधूरा ज्ञान है, उसी प्रकार परम सत्य को केवल निराकार मान लेना ग़लत नहीं अधूरा ज्ञान है।
परम सत्य को केवल निराकार ब्रह्म रूप में समझने वाला व्यक्ति सत्य के अन्य रूपों को नहीं जान सकता। परंतु, श्रीभगवान को समझने वाला व्यक्ति परमात्मा को भी जान सकता है। सर्वज्ञ ज्ञान होने के कारण उस ज्ञान में अन्य दो निम्न स्तरों का ज्ञान समाहित हो जाता है। दूसरे शब्दों में, उसका ज्ञान पूर्ण होता है।
इसलिए हमें समझना चाहिए कि मूलतः परम सत्य परम पुरुष श्रीभगवान हैं और उनके अन्य दो गौण पहलू भी हैं।
भगवदगीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं:-

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।।
(भगवदगीता 14.27)

अनुवाद: “और मैं ही परम ब्रह्म की मूल सत्ता, अमृतत्व, अव्ययता तथा शाश्वत नित्यधर्म और एकान्तिक ब्रह्मजीवन का आधार हूँ।”

1-द) शिष्य परम्परा क्या है? और यह क्यों महत्वपूर्ण है? हमारे सम्प्रदाय का क्या नाम है? तथा दूसरे वैष्णव सम्प्रदायों के क्या नाम हैं? यदि हो सके, तो सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों के नाम बताइये।

उत्तर - श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी अपने ग्रंथ जैव धर्म में वर्णन करते हैं - संसार में अधिकतर लोग मायावाद का आश्रयकर भक्तिपथ से रहित कुपथ पर चलते हैं। यदि शुद्ध भक्तो का कोई अलग सम्प्रदाय न हो तो सत्संग मिलना दुर्लभ हो जायेगा।

- इसलिये पद्मपुराण में कहा गया है –

सम्प्रदाय विहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ।
श्री ब्रह्मा रुद्रसनका वैष्णवा: सितिपावनाः ।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या युक्तले पुरुषमोन्तमात् ।

रामानुषं श्री: स्वीचक्रे मध्वाचार्य: चतुर्मुख :
श्री विष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसन।

- इन सम्प्रदायों में वेद आदि ग्रन्थ प्राचीनकाल से जिस रूपमें है, उसमें कुछ परिवर्तन अथवा अंश प्रक्षिप्त होने की सम्भावना नहीं है। अत: इन ग्रन्थो में संदेह की आवश्यकता नहीं है। साधु-संतों में सह सम्प्रदाय की व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। इनमें से ब्रह्म-सम्प्रदाय सबसे प्राचीन है।
- (ISKCON) जिसे हम अंतर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ के नाम से जानते हैं वह ब्रह्म - संप्रदाय के अन्तर्गत है।
- वैष्णव सम्प्रदाय अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण से चली आ रही विशुद्ध शिष्य - परंपरा और ये प्रामाणिक वैष्णव- संप्रदाय कुल 4 हैं –
    1. श्री सम्प्रदाय – कलियुग में प्रथम आचार्य हुए श्रीपाद रामानुजाचार्य
    2. ब्रह्म सम्प्रदाय – कलियुग में प्रथम आचार्य हुए श्रीपाद मध्वाचार्य
    3. रुद्र सम्प्रदाय – कलियुग में प्रथम आचार्य हुए श्रीपाद विष्णुस्वामी
    4. कुमार सम्प्रदाय - कलियुग में प्रथम आचार्य हुए श्रीपाद निबादित्याचार्य

(2-द) हमारे सम्प्रदाय में जगन्नाथ दास बाबाजी से अबतक के आचार्यों के नाम बताइये। अगर हो सके, तो चैतन्य महाप्रभु से अबतक के आचार्यों के नाम बताइए। तथा कृष्ण से मध्वाचार्य तक के आचार्यों के नाम बताइए।

उत्तर –

जगन्नाथ दास बाबाजी से अबतक के आचार्यों के नाम –

1. श्रील गौर किशोर दास बाबाजी महाराज
2. श्रील भक्ति विनोद ठाकुर
3. श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद
4. श्रील ए .सी भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद

चैतन्य महाप्रभु से अबतक के आचार्यों के नाम –

1. श्री चैतन्य महाप्रभु
2. श्रील रूप गोस्वामी , श्रील सनातन गोस्वामी
3. श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी , श्रील जीव गोस्वामी
4. श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी
5. श्रील नरोत्तम दास ठाकुर
6. श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर
7. श्रील बलदेव विद्या भूषण
8. श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज
9. श्रील गौर किशोर दास बाबाजी महाराज
10. श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

11. श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद
12. श्रील ए .सी भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद

कृष्ण से मध्वाचार्य तक के आचार्यों के नाम –

1. भगवान श्रीकृष्ण
2. श्री ब्रह्मा
3. श्री नारद
4. श्रील वेद व्यास
5. श्रीपाद मध्वाचार्य

(३-द) तद्विधि प्रणीपातेन , सत्य को सीखने का प्रयास करो- इस श्लोक का तात्पर्य क्या है?

उत्तर – गीता (4.34) श्रीभगवान द्वारा ये वचन कहा गया है – जिसका तात्पर्य है कि आत्म साक्षात्कार का मार्ग बहुत कठिन है इसलिए श्रीभगवान का उपदेश है की जो व्यक्ति वास्तविक रूप में आध्यात्मिक जीवन की प्रगति करना चाहता है ऐसे गंभीर साधक को एक प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

- एक प्रामाणिक गुरु स्वभाव से दयालु होता है
- इसलिए शिष्य का कर्तव्य है कि न केवल गुरु से विनीत होकर सुने, अपितु विनीत भाव तथा सेवा और जिज्ञासा द्वारा गुरु से स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करें।
- कोई भी व्यक्ति अपनी निजी विधि का निर्माण करके स्वरूप सिद्ध नहीं बन सकता, इसलिए श्रीभगवान का उपदेश है कि एक तत्व दर्शी गुरु की शरण ग्रहण की जाय।

(४-द) दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु, और पथ -प्रदर्शक गुरु क्या हैं? उपर्युक्त गुरुओं के प्रति विभिन्न व्यवहारों में क्या अंतर है?

उत्तर –

- **शिक्षा गुरु-** अनेक श्रवण गुरुओं में से अपने भावों के अनुकूल जो भजन शिक्षा देते हैं, उन्हें शिक्षा गुरु कहते हैं। शिक्षा गुरु भी अनेक हो सकते हैं। शिक्षा गुरु और श्रवण गुरु प्राय: एक ही होते हैं।
- **दीक्षा गुरु -** जो पाञ्चरात्रिक-विधि के अनुसार उपासना का मंत्र प्रदान करते हैं। दीक्षा गुरु में सद्गुरु के समस्त लक्षण होने चाहिए। वह वेदों के तात्पर्य-निर्णय में पारंगत, कुशल वक्ता, भगवान् की प्रत्यक्ष अनुभूतिसे युक्त, विषयोंसे विरक्त आदि गुणोंसे युक्त होना चाहिए।
- दीक्षा गुरु एक ही होते हैं, प्रामाणिक दीक्षा- गुरु का त्याग कभी नहीं किया जा सकता। जैसे – विवाह जीवन में एक ही बार होता है उसी प्रकार प्रामाणिक दीक्षा गुरु का वरण भी जीवन में एक ही बार होता है।
- **पथ – प्रदर्शक गुरु –** पथ – प्रदर्शक गुरु कोई भी हो सकता है वो भक्त भी हो सकता है और अभक्त भी। जैसे – बिल्वमंगल ठाकुर के जीवन में चिंतामणि वैश्या। जो जाने -अनजाने में

हमें एक प्रामाणिक गुरु या संस्था की जानकारी देता है, जैसे- राह चलते हुए किसी व्यक्ति ने बोल दिया ISKCON मन्दिर बहुत अच्छी जगह है आप वहाँ ज़ाया करो उसके कहने पर हम ISKCON मन्दिर आने लगे और अच्छे से जुड़ गये तो वह अनजान व्यक्ति भी हमारा पथ प्रदर्शक गुरु कहलाएगा।

(५-द) 'संस्थापक आचार्य' इन शब्दों में विशेष भाव क्या है? श्रील प्रभुपाद का इस्कॉन भक्तों से क्या रिश्ता है?

उत्तर – 'संस्थापक' का अर्थ होता है 'स्थापना करने वाला' और 'आचार्य' का अर्थ होता है 'गुरु' और 'शिक्षक' इस प्रकार 'संस्थापक आचार्य' वह होता है जिसने किसी संस्था, सम्प्रदाय या संगठन की नींव रखी हो और जो उस संस्था के मुख्य गुरु या मार्गदर्शक हों।

- श्रील प्रभुपाद जी ISKCON संस्था के 'संस्थापक आचार्य' हैं।
- श्रील प्रभुपाद जी का ISKCON के भक्तों से शिक्षा- गुरु का रिश्ता है।

(६-द) वर्णन कीजिये किस तरह से श्रील प्रभुपाद विदेश गये और वहाँ कैसे कृष्णभावनामृत आन्दोलन चालू किया?

उत्तर – श्रील प्रभुपाद जी, जिन्हें ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद के नाम से भी जाना जाता है, ने इस्कॉन (इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर कृष्णा कॉन्शियसनेस) की स्थापना 1966 में न्यूयॉर्क शहर में की। उनकी इस यात्रा की शुरुआत कुछ महत्वपूर्ण चरणों और सिद्धांतों पर आधारित थी:

1. **भारत से पश्चिम की ओर यात्रा:** 1965 में, 69 वर्ष की आयु में, श्रील प्रभुपाद ने "जलदूता" नामक मालवाहक जहाज से भारत से अमेरिका की यात्रा की। वे बहुत कम धन के साथ न्यूयॉर्क पहुंचे और वहां उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार की शुरुआत की।
2. **वैदिक ज्ञान का प्रचार:** प्रभुपाद जी का मुख्य उद्देश्य भगवद गीता और श्रीमद् भागवतम के संदेश को पश्चिमी देशों में फैलाना था। उन्होंने भक्ति योग की शिक्षा दी और बताया कि भगवान श्रीकृष्ण ही सर्वोच्च भगवान हैं। उनकी शिक्षाएं मुख्य रूप से वैदिक ग्रंथों पर आधारित थीं।
3. **इस भक्तिपूर्ण जीवनशैली को अपनाना:** श्रील प्रभुपाद ने लोगों को कृष्ण भक्ति से जुड़ने के लिए चार प्रमुख नियमों का पालन करने पर जोर दिया:
    - मांसाहार का त्याग
    - नशीले पदार्थों का त्याग
    - जुआ खेलने से परहेज
    - अवैध यौन संबंधों से दूर रहना
4. **संकीर्तन आंदोलन:** प्रभुपाद ने हरिनाम संकीर्तन (कृष्ण के नाम का जप और कीर्तन) को प्रचार का मुख्य माध्यम बनाया। उन्होंने यह संदेश दिया कि कृष्ण के नाम का जप करने से ही कलियुग में भगवद्प्राप्ति किया जा सकता है।

5. **संस्था की स्थापना:** 1966 में, उन्होंने न्यूयॉर्क में इस्कॉन की स्थापना की। इसके बाद उन्होंने दुनिया के अन्य देशों में भी इस्कॉन के मंदिर और केंद्र स्थापित किए। उनकी शिक्षाओं और भक्तिपूर्ण जीवनशैली के कारण बड़ी संख्या में पश्चिमी लोग इस्कॉन से जुड़े।

6. **पुस्तकों का प्रकाशन:** प्रभुपाद जी ने संस्कृत वैदिक ग्रंथों का अनुवाद और व्याख्या करके उन्हें अंग्रेज़ी में प्रकाशित किया। उनकी पुस्तकें "भगवद-गीता यथारूप", "श्रीमद भागवतम", और अन्य ग्रंथ आज भी इस्कॉन के अनुयायियों के लिए मुख्य धार्मिक पुस्तकें हैं।

7. **वैश्विक आंदोलन:** उनके प्रयासों के कारण इस्कॉन एक वैश्विक आंदोलन बन गया, जिसमें हजारों अनुयायी और सैकड़ों मंदिर शामिल हैं। उनका संदेश था कि किसी भी जाति, धर्म, या संस्कृति के व्यक्ति कृष्ण भक्ति से जुड़ सकते हैं और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।

(३) कृष्णभावनामृत से सम्बन्धित:

1. आध्यात्मिक जीवन में रुचि का क्या कार्य है?

उत्तर – श्रील जीव गोस्वामी जी के अनुसार — "श्रीकृष्ण में अभिलाषा या तृष्णा को रुचि कहते हैं"।

- आध्यात्मिक जीवन में रुचि के अभाव में भक्ति राज्य में प्रवेश नहीं किया जा सकता।
- भक्ति मार्ग में रुचि उत्पन्न होने से भक्ति के अंगों का पालन करने में उत्साह बना रहता है।
- भक्ति में रुचि होने से नाम जप,श्रवण,कीर्त्तन, स्मरण इत्यादि का पालन करने में लेशमात्र भी परिश्रम का अनुभव नहीं होता है।
- भक्ति में रुचि उत्पन्न होने से भगवान की लीला कथा श्रवण, कीर्त्तन से तृप्ति नहीं होती।

2. सनातन धर्म क्या है?

उत्तर – श्रील प्रभुपाद जी ने भगवद्गीता यथारूप की भूमिका में वर्णन किया है –

"सनातन- धर्म किसी साम्प्रदायिक धर्म-पद्धति का सूचक नहीं है। यह तो नित्य परमेश्वर के साथ नित्य जीवों के नित्य कर्म का सूचक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह जीव के नित्य धर्म (वृत्ति) को बताता है। श्रीपाद रामानुजाचार्य ने सनातन शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है, "वह जिसका न आदि है और न अन्त।" अतएव जब हम सनातन -धर्म के विषय में बातें करते हैं तो हमें श्रीपाद रामानुजाचार्य के प्रमाण के आधार पर यह मान लेना चाहिए कि इसका न आदि है, न अन्त।"

"अंग्रेज़ी का रिलीजन शब्द सनातन – धर्म से थोड़ा भिन्न है। रिलीजन से विश्वास का भाव सूचित होता है और विश्वास परिवर्तित हो सकता है। किसी को एक विशेष विधि में विश्वास हो सकता है और वह इस विश्वास को बदलकर दूसरा ग्रहण कर सकता है, लेकिन सनातन-धर्म उस कर्म का सूचक है, जो बदला नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ – न तो जल से उसकी तरलता विलग की जा सकती है, न अग्नि से ऊष्मा विलग की जा सकती है, ठीक इसी प्रकार जीव से उसके नित्य कर्म को विलग नहीं किया जा सकता। सनातन – धर्म जीव का शाश्वत अंग है। अतएव जब हम सनातन-धर्म

के विषय में बात करते हैं तो हमें श्रीपाद रामानुजाचार्य के प्रमाण को मानना चाहिए कि उसका न तो आदि है, न अन्त"।

3. भगवान् चैतन्य भक्तियोग की तुलना हृदय में भक्तिलता बीज को बोने से करते हैं। भक्तिलता का सिंचन, श्रवण, कीर्तन और भक्ति की अन्य विधियों से किया जाता है। कृपया उन दो प्रकार के खतरों का उल्लेख कीजिए जिनके विषय में भगवान् चैतन्य ने चेतावनी दी है। भक्त भक्तिलता की सुरक्षा इन खतरों से कैसे कर सकता है?

उत्तर – भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी जी के समक्ष वर्णन किया है -

सारे ब्रह्माण्डों में जीव अपने - अपने कर्मों के अनुसार भ्रमण कर रहें हैं। इनमें से कुछ उच्च लोकों को जाते हैं और कुछ निम्न लोकों को। ऐसे करोड़ों भटक रहे जीवों में से कोई एक अत्यन्त भाग्यशाली होता है, जिसे कृष्ण की कृपा से अधिकृत गुरु का सानिध्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसा व्यक्ति भक्ति रूपी लता के बीज को प्राप्त करता है।

जब किसी व्यक्ति को भक्ति का बीज प्राप्त हो जाता है, तब उसे माली बनकर उस बीज को अपने हृदय में बोकर उसका ध्यान रखना चाहिए। यदि वह बीज को क्रमशः श्रवण तथा कीर्त्तन की विधि से सींचता है, तो वह बीज अंकुरित होने लगेगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु वर्णन करते हैं - जो भक्त भक्ति लता का पालन - पोषण करना चाहता है उसका यह कर्तव्य है कि वह बहुत सावधान रहे। और भक्ति लता को सींचते रहना चाहिए - इहाँ माली सेचे नित्य श्रवणादि जल। उसे नियमित रूप से श्रवण तथा कीर्तन रूपी जल से सींचते रहना चाहिए।ऐसा नहीं है कि एक अवस्था में आकर मनुष्य श्रवण - कीर्तन बन्द कर सकता है और परिपक्व भक्त बन जाता है। जो बन्द कर देता है, वह अवश्य ही भक्ति से गिर जाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति लता बीज के विकास को बाधा पहुँचाने वाली दूसरा कारण बतलाते हैं - वैष्णव अपराध

यदि वैष्णव- अपराध उठे हाती माता।
उपाड़े व छिण्डे, तार शुखि याय पाता।।

यदि कोई भक्त भौतिक जगत में भक्ति- लता का विकास करते हुए किसी वैष्णव के चरणों में अपराध करता हैं, तो उसके अपराध की तुलना उस पागल हाथी से की जाती है, जो लता को उखाड़ कर उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। इस तरह लता की पत्तियाँ सूख जाती है।

एक भक्त भक्ति लता की सुरक्षा इन ख़तरों से कैसे कर सकता है, श्रीचैतन्य महाप्रभु बताते हैं-

ताते माली यत्न करि' करे आवरण।
अपराध - हस्तीरे यैछे ना हय उद्‌ग़म।।

माली को चारों और बाड़ बनाकर लता की रक्षा करनी चाहिए, जिससे अपराधों का शक्तिशाली हाथी भीतर न प्रवेश कर पाए।

श्रील प्रभुपाद बताते हैं कि कनिष्ठ भक्त की रक्षा शुद्ध भक्तों का घेरा बनाकर करनी चाहिए। जिससे पागल हाथी को भक्ति लता को उखाड़ फेंकने का अवसर नहीं मिल पाएगा। श्रील प्रभुपाद बतलाते हैं कि लता के चारों और बाढ़ लगाने का अर्थ है भक्ति के विधि-विधानों का पालन करना तथा शुद्ध भक्तों की संगति करके भक्ति लता की रक्षा करनी चाहिए।

4. ब्राह्मण के 9 गुण क्या हैं?

उत्तर -

1. शान्तिप्रिय
2. आत्मसंयमी
3. तपस्वी
4. पवित्रता
5. सहनशीलता
6. ज्ञानवान
7. सत्यता
8. धार्मिकता
9. अनुभवी (सही निर्णय लेने की क्षमता)

5. ऐसे तीन उदाहरण दीजिए जिनमें ब्राह्मण के उपर्युक्त गुणों में से तीन का प्रयोग दैनिक जीवन में आध्यात्मिक और भौतिक रूप से किया जा सकता है।

उत्तर - 1. पवित्रता - पवित्रता आध्यात्मिक जीवन में प्रगति के लिए अतिआवश्यक है इसलिए कहा गया है " purity is the force" पवित्रता दो प्रकार की होती है बाहरी और आन्तरिक । बाहरी रूप से पवित्रता का अर्थ है स्नान इत्यादि करना, लेकिन आंतरिक पवित्रता का अर्थ है अपने मलिन मन और चित्त की सफ़ाई जिसमें अनेक जन्मों के पाप कर्म और संस्कार भरे पड़े हैं जिसकी सफ़ाई हरे कृष्ण महामंत्र का नियमित रूप से जप करने से होगा तथा मलिन मन और चित्त पवित्र होगा।

2. सहनशीलता - यदि हम भक्ति मार्ग में आगे बढ़ना चाहते हैं तो सहनशील होना अत्यंत आवश्यक है श्रीचैतन्य महाप्रभु जी का उपदेश है कि भगवान के पवित्रनामों का निरन्तर जप वही कर सकता है जो वृक्ष के समान सहनशील है। और अपने आप को तृण से भी ज़्यादा तुच्छ समझे और हमेशा दूसरे को सम्मान देने का भाव हो और अपने सम्मान की इच्छा ना हो। सहनशीलता गुण को कृष्ण भावनामृत के प्रचार कार्य में भी किया जा सकता है।

3. आत्मसंयमी - श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है - जिह्वेर लालसा जेई इते उते धाई..... यदि हमारी इंद्रियाँ हमारे संयम में नहीं होंगी तो हम आध्यमिक जीवन में प्रगति नहीं कर सकते हैं। और बाहरी रूप से भी देखा जाए तो इंद्रिय संयम हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करता है।

6. "मैं कौन हूँ" यह आध्यात्मिक जीवन का मूल प्रश्न है; कृपया महाप्रभु की शिक्षाओं से बताइए कि आप कौन हैं?

उत्तर - श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने सनातन गोस्वामी जी के समक्ष (चै.च. मध्य 20/108) वर्णन किया है -

जीवेर 'स्वरूप' हय - कृष्णेर 'नित्य -दास'।

जीवात्मा श्रीकृष्ण का सनातन सेवक है यही जीव की वैधानिक स्थिति है, क्योंकि जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति है और वह भगवान से एक ही समय उसी तरह अभिन्न और भिन्न है, जिस तरह सूर्य-प्रकाश या अग्नि का एक कण।

7. क्या मनुष्य भगवान् बन सकता है? अगर हाँ तो विधि समझाइये। भगवान् श्रीकृष्ण का इस भौतिक जगत में अवतरण मनुष्य की तरह है? किस शक्ति के द्वारा वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं? वे किस तरह से भौतिक जगत में अवतारित होते हैं?

उत्तर - मनुष्य कभी भी भगवान नहीं बन सकता।

गीता में श्रीभगवान ने कहा है - उनका इस भौतिक जगत में जन्म लेना एक सामान्य मनुष्य के जन्म लेने जैसा नहीं है। भगवान जब इस भौतिक संसार में अवतीर्ण होते हैं तो उनका शरीर दिव्य होता है सामान्य भौतिक शरीर की तरह जड़ और परिवर्तनशील नहीं होता।

गीता 4.6 में श्रीभगवान के वचन हैं -

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

यद्यपि मैं अजन्मा तथा अविनाशी हूँ और यद्यपि मैं समस्त जीवों का स्वामी हूँ, तो भी प्रत्येक युग में मैं अपने आदि दिव्य रूप में प्रकट होता हूँ।

"भगवान् ने अपने जन्म की विलक्षणता बतलाई है । यद्यपि वे सामान्य पुरुष की भाँति प्रकट हो सकते हैं, किन्तु उन्हें विगत अनेकानेक "जन्मों" की पूर्ण स्मृति बनी रहती है, जबकि सामान्य मनुष्य को कुछ ही घंटे पूर्व की घटना स्मरण नहीं रहती । यदि कोई पूछे कि एक दिन पूर्व इसी समय तुम क्या कर रहे थे, तो सामान्य व्यक्ति के लिए इसका तत्काल उत्तर दे पाना कठिन होगा। उसे इसको स्मरण करने के लिए अपनी बुद्धि को कुरेदना
पड़ेगा कि वह कल इसी समय क्या कर रहा था । फिर भी लोग प्रायः अपने को ईश्वर या कृष्ण घोषित करते रहते हैं । मनुष्य को ऐसी निरर्थक
घोषणाओं से भ्रमित नहीं होना चाहिए । अब भगवान् दुबारा अपनी प्रकृति या स्वरूप की व्याख्या करते हैं । प्रकृति का अर्थ स्वभाव तथा स्वरूप दोनों
है। भगवान् कहते हैं कि वे अपने ही शरीर में प्रकट होते हैं । वे सामान्य जीव की भाँति शरीर - परिवर्तन नहीं करते। इस जन्म में बद्धजीव का एक
प्रकार का शरीर हो सकता है, किन्तु अगले जन्म में दूसरा शरीर रहता है । भौतिक जगत् में जीव का कोई स्थायी शरीर नहीं है, अपितु वह एक शरीर
से दूसरे में देहान्तरण करता रहता है । किन्तु भगवान् ऐसा नहीं करते। जब भी वे प्रकट होते हैं तो अपनी अन्तरंगा शक्ति से वे अपने उसी आद्य शरीर
में प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, श्रीकृष्ण इस जगत् में अपने आदि शाश्वत स्वरूप में दो भुजाओं में बाँसुरी धारण किये अवतरित होते हैं। वे इस

भौतिक जगत् से निष्कलुषित रह कर अपने शाश्वत शरीर सहित प्रकट होते हैं। यद्यपि वे अपने उसी दिव्य शरीर में प्रकट होते हैं और ब्रह्माण्ड के
स्वामी होते हैं तो भी ऐसा लगता है कि वे सामान्य जीव की भाँति प्रकट हो रहे हैं। यद्यपि उनका शरीर भौतिक शरीर की भाँति क्षीण नहीं होता
फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् कृष्ण बालपन से कुमारावस्था तथा कुमारावस्था से तरुणावस्था प्राप्त करते हैं । किन्तु आश्चर्य तो यह है
कि वे कभी युवावस्था से आगे नहीं बढ़ते । कुरुक्षेत्र युद्ध के समय उनके अनेक पौत्र थे या दूसरे शब्दों में, वे भौतिक गणना के अनुसार काफी वृद्ध
थे। फिर भी वे बीस-पच्चीस वर्ष के युवक जैसे लगते थे। हमें कृष्ण की वृद्धावस्था का कोई चित्र नहीं दिखता, क्योंकि वे कभी भी हमारे समान
वृद्ध नहीं होते यद्यपि वे तीनों काल में – भूत, वर्तमान तथा भविष्यकाल में - सबसे वयोवृद्ध पुरुष हैं। न तो उनका शरीर और न ही बुद्धि कभी
क्षीण होती या बदलती है" । (गीता 4.6 तात्पर्य)

8. ब्राह्मण को द्विज या दूबारा पैदा हुआ क्यों कहते हैं? ब्राह्मण को ज्यादा सावधान होना चाहिए क्योंकि वह अपने कार्य के लिए ज्यादा जिम्मेदार है? ऐसे अतिरिक्त लाभ क्या हैं जिनके कारण ब्राह्मण दीक्षा स्वीकार करना उचित है?

उत्तर - शास्त्रों में कहा गया है कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति शूद्र के रूप में जन्म लेता हैं अर्थात् चौथी श्रेणी का व्यक्ति (जन्मना जायते शूद्रः)। संस्कार इत्यादि प्रक्रियाओं के द्वारा कोई तीसरी श्रेणी का व्यक्ति बन सकता है अर्थात् एक द्विज (संस्काराद भवेद द्विजः)। ज्ञान और संस्कृति के अभ्यास से कोई दूसरी श्रेणी का व्यक्ति बन सकता है, जिसे विप्र कहते हैं (वेद - पाठाद भवेद विप्रः)। लेकिन जो केवल ब्रह्म को जानता है, वह प्रथम श्रेणी का व्यक्ति होता है, जिसे ब्राह्मण कहा जाता है (ब्रह्म जनाति इति ब्राह्मणः)गीता (18.42) में श्रीभगवान ने ब्राह्मण के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

एक व्यक्ति भौतिक रूप से माँ के गर्भ से जन्म लेता है और आध्यात्मिक रूप से उसका द्वितीय जन्म तब होता है जब वह दीक्षा लेता है, इसलिए उसे द्विज या द्वितीय जन्मा कहा जाता है।

9. यदि भक्तिगणों के द्वारा आसानी से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है तो फिर भक्त इस तरह की परेशानियों और खराबियों को लेकर कृष्णभावनामृत का प्रसार क्यों करना चाहता है?

उत्तर - भगवान के भक्त भगवान से भी ज़्यादा दयालु होते हैं एक शुद्ध भक्त न स्वर्गलोक का सुख चाहता है और न पाँच प्रकार की वैकुण्ठ की मुक्ति को चाहता है। एक शुद्ध भक्त का यही भाव होता है कि वो उच्च लोकों में जाये या निम्न लोकों में कहीं भी क्यों न रहे वो तो केवल भगवान की सेवा करना चाहता है, श्रील प्रभुपाद गीता (3.29) के तात्पर्य में कहते है "भगवद्भक्त भगवान से भी अधिक दयालु होते हैं, क्योंकि वे श्रीभगवान के अभिप्राय को समझते हैं। फलतः वे सभी प्रकार के

संकट झेलते हैं, यहाँ तक कि वे इन अज्ञानी पुरुषों के पास जा-जा कर उन्हें कृष्णभावनामृत के कार्यों में प्रवृत्त करने का प्रयास करते हैं, जो मानव के लिये परम आवश्यक है"।

(ए) निजी जीवन के आधार पर:

1. संयम के नियम क्या हैं? इनको तोड़ना क्यों गलत है?

उत्तर - चार नियामक सिद्धांत हैं-

1. मांसाहार नहीं करना
2. अवैध सम्बन्ध नहीं करना
3. नशा नहीं करना
4. जुआ नहीं खेलना

ये धर्म के स्तंभ हैं अर्थात् दया,शुद्धता,तपस्या और सत्य। अगर हम इन चार नियामक सिद्धान्तों का पालन नहीं करते हैं, तो ये स्तम्भ क्रमशः नष्ट हो जाते हैं:

1. मांसाहार करने से - धर्म का पहला स्तंभ दया नष्ट हो जाता है।
2. अवैध सम्बन्ध से - धर्म का दूसरा स्तंभ शुद्धता नष्ट हो जाता है।
3. नशा करने से - धर्म का तीसरा स्तंभ तपस्या नष्ट हो जाती है।
4. जुआ से - धर्म का चौथा स्तंभ सत्य नष्ट हो जाता है।

श्रील प्रभुपाद जी ने गीता (7.28) के तात्पर्य में कहते हैं -

"जो पापी,नास्तिक,मूर्ख तथा कपटी हैं उनके लिए इच्छा तथा घृणा के द्वन्द को पार कर पाना कठिन है। केवल ऐसे पुरुष भक्ति स्वीकार करके क्रमशः श्रीभगवान के शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करते हैं, जिन्होंने धर्म के विधि - विधानों का अभ्यास करने,पुण्य कर्म करने तथा पाप कर्मों के जीतने में अपना जीवन लगाया है। फिर वे क्रमशः श्रीभगवान का ध्यान समाधि में करते हैं"।

2. 16 माला रोज जप करने का क्या महत्व है? जप करने का क्या परिणाम है?

उत्तर - श्रील प्रभुपाद जी ने प्रतिदिन कम से कम 16 माला हरे कृष्ण महामंत्र जपने का नियम बनाया है, और एकादशी के दिन 25 माला जपने का निर्देश दिया है। इसे हम अपनी अन्य भौतिक ज़िम्मेदारियों के साथ प्रतिदिन व्यावहारिक रूप से कर सकते हैं। हमारे आचार्यों द्वारा भी न्यूनतम संख्या में जप करने की महत्ता पर ज़ोर दिया गया है ताकि हम पवित्र नाम महत्व को समझ सकें। हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने से हमें निम्नलिखित लाभ होते हैं -

1. हम अपने मन पर नियंत्रण कर सकते हैं, बजाय इसके कि मन हम पर हावी हो।
2. कृष्ण स्वयं अपने नाम में विद्यमान हैं
3. महामंत्र जप से हम कलियुग के पापमय वातावरण को नस्त कर सकते है।
4. जितना अधिक हम हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करेंगे,उतना ही लाभ मिलेगा। अगर हम समस्त वैदिक शास्त्रों का अध्ययन करें,तो हमें हरे कृष्ण जप से बड़ा कोई साधन नहीं मिलेगा।

5. दीक्षा के समय हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम प्रतिदिन 16 माला जप करेंगे और चार नियमों का कड़ाई से पालन करेंगे, और अगर हम इसका पालन नहीं करते हैं, तो हम अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ रहे हैं, जो एक अपराध है।
6. महामंत्र जप से हम अपने आध्यात्मिक स्वास्थ्य को सही बनाए रख सकते हैं।

यदि हम प्रतिदिन 16 माला का जप नहीं करते हैं:

1.हमारी आध्यात्मिक शक्ति कम हो जाएगी।

2.हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मत्सर के शिकार बन सकते हैं।

3.हमारे लिए चार नियमों का पालन करना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि यह हमारे गुरु की कृपा और हरिनाम की शक्ति है जिससे हम इन नियमों का पालन कर पाते हैं।

3. वे कौन से महत्वपूर्ण कार्य हैं जिनका भोजन से पूर्व तथा विश्राम करने के लिए स्मरण रखना चाहिए?

उत्तर - प्रसाद ग्रहण करने से पहले ध्यान रखने योग्य बातें:

- याद रखें कि प्रसाद श्रीकृष्ण की कृपा है और यह श्रीकृष्ण से अलग नहीं है।
- प्रसाद का सम्मान करते समय जूते/चप्पल उतारें।
- अपने हाथ, पैर और मुंह धो लें।
- “महाप्रसादे गोविंदे” जैसी प्रार्थना का पाठ करें।
- अगर बाल लंबे हैं तो उन्हें बांध लें।

प्रसाद ग्रहण करने के बाद ध्यान रखने योग्य बातें:

- प्रसाद ग्रहण करने के बाद उठने से पहले श्रीकृष्ण का धन्यवाद करें।
- अपने हाथ, पैर और मुंह धो लें।
- कोई कठिन शारीरिक कार्य न करें।
- प्रसाद ग्रहण करने के बाद स्थान को साफ करें।

4. व्यक्ति किस समय अपवित्र होता है कि उसे अवश्य ही स्नान करना चाहिए?

उत्तर - जागने के बाद, अपने दांतों को ब्रश करें, अपनी जीभ को साफ करें, और फिर स्नान करें। स्नान शुरू करते समय, आप निम्न मंत्र का उच्चारण कर सकते हैं:

“(ॐ) अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतः अपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।”

चाहे कोई अपवित्र हो या पवित्र, या सभी भौतिक जीवन की स्थितियों से गुजरा हो, जो भी भगवान कमल-नेत्र कृष्ण को स्मरण करता है, वह बाहरी और आंतरिक रूप से शुद्ध हो जाता है।[गरुड़ पुराण, हरि-भक्ति-विलास 3.47 में उद्धृत]

• इस प्रक्रिया के दौरान, कोई भी हरे कृष्ण मंत्र, या कोई श्लोक या प्रार्थना का जप कर सकता है। यह रात के दौरान नींद या किसी बुरे सपने से उत्पन्न हुई चेतना को साफ करने में मदद करता है। जप करने से कोई तुरंत शुभ और भौतिक गुणों के संक्रमण से ऊपर उठ जाता है।
• मल त्यागने के बाद स्नान करना आवश्यक है।
• मृत शरीर को छूने के बाद स्नान करना आवश्यक है।
• श्मशान भूमि पर जाने के बाद स्नान करना आवश्यक है।

5. ब्राह्मण के लिए अथवा मन्दिर में शुद्धता का ग्राह्य रूप क्या है?

उत्तर - स्वयं को शुद्ध करने का सबसे अच्छा तरीका है हरे कृष्ण का शुद्ध जप करना।
• स्वच्छता आध्यात्मिक जीवन के चार स्तंभों में से एक है (अन्य तीन हैं दया, तपस्या और सत्यनिष्ठा)।
• हमारे मंदिर भी पूरी तरह से स्वच्छ होने चाहिए। लोग इस्कॉन मंदिरों की स्वच्छता की प्रशंसा करते हैं।
• ब्राह्मणों के नौ गुणों में से एक है शुचि, जिसका अर्थ है पूरी तरह से स्वच्छ। ब्राह्मण का अर्थ है पूरी तरह से स्वच्छ होना। ब्राह्मणिक गुण सबसे पहले स्वच्छता है।
• ब्राह्मणों को स्वच्छता का अभ्यास करना चाहिए, आंतरिक रूप से भगवान के नाम का जप करके और बाहरी रूप से नियमित स्नान करके। इसके अलावा ब्राह्मणों को विशेष रूप से गीता, श्रीमद्भागवतम, चैतन्य चरितामृत, ईशोपनिषद, भक्ति रसामृत सिंधु और उपदेशामृत का साथ ही सभी छोटे-छोटे पुस्तकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए।
श्रील प्रभुपाद ने इस विषय पर टिप्पणी की:
• डलास और एडिनबर्ग में भक्तों ने शिकायत की कि मंदिर में चूहे थे। उन्होंने श्रील प्रभुपाद से पूछा कि क्या उन्हें मारने की अनुमति है। श्रील प्रभुपाद का उत्तर था: नहीं, आपको मारा जाना चाहिए क्योंकि आपने स्वच्छता का संकल्प लिया था लेकिन उसे नहीं निभाया!
• "जो लोग नियमित रूप से स्नान नहीं करते, उन्हें भूत और पागल प्राणियों के साथ रहने वाला माना जाता है।" (श्रीमद्भागवत 4.2.14-15)

6. कौन सा सही तरीक़ा है जिससे पुरुष तथा महिलाएँ मन्दिर या मन्दिर के बाहर अलग -अलग आश्रम में मेल रख सकते हैं? मन्दिर में मेल तथा सेवा के बाहर मेल को लेकर उत्तर दीजिए।

उत्तर - गृहस्थ – उसे अपनी पत्नी को छोड़कर हर महिला का सम्मान अपनी माँ के रूप में करना चाहिए।

ब्रह्मचारी – हर महिला का सम्मान माँ के रूप में करें। केवल महत्वपूर्ण भक्ति सेवाओं के लिए ही बातचीत करें।
• ब्रह्मचारी अक्सर महिलाओं को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति रखते हैं, लेकिन श्रील प्रभुपाद ने कभी ऐसा नहीं किया क्योंकि वह आकर्षण और प्रतिकार्षण से ऊपर थे और केवल सभी को कृष्ण की सेवा में लगाना चाहते थे। जब एक भक्त ने प्रभुपाद से शिकायत की कि हमारे आंदोलन में महिलाओं की उपस्थिति से बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न होती हैं और सुझाव दिया कि हम अब महिलाओं को

पूर्णकालिक भक्त के रूप में न स्वीकार करें, तो श्रील प्रभुपाद ने उत्तर दिया, "वे कृष्ण की शरण लेने आई हैं। हम उन्हें मना नहीं कर सकते।" जब कुछ ब्रह्मचारियों ने महिलाओं की उपस्थिति से मंदिर में परेशान होने की बात कही, तो श्रील प्रभुपाद ने व्यंग्यपूर्वक सुझाव दिया कि ब्रह्मचारी जंगल चले जाएं। पहले, ब्रह्मचारी जंगलों में रहते थे, जहाँ शहरों की हलचल से दूर रहते थे। लेकिन आधुनिक युग में यह संभव नहीं है।
सामान्य बिंदु –
• महिलाओं को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए, और यदि वह वैष्णवी हैं, तो उन्हें वैष्णव पद्धति के अनुसार संबोधित करना चाहिए।
• अनादर न करें।
• ईर्ष्या का भाव न रखें।
• उन्हें उचित सम्मान के साथ दूर से देखा जाए। यदि वे गंभीर भक्त हैं, तो वे आपकी सख्ती का सम्मान करेंगी।
हालांकि, हमारे मंदिरों में यह अक्सर व्यावहारिक आवश्यकता होती है कि पुरुष और महिलाएँ भक्ति सेवा में साथ-साथ भाग लें। हम ऐसी स्थितियों से बच नहीं सकते, हालांकि मंदिर प्राधिकरणों को यह व्यवस्था करनी चाहिए कि पुरुष और महिला भक्तों को यथासंभव अलग रखा जाए। ब्रह्मचारियों को भक्त महिलाओं के प्रति वैष्णव सम्मान बनाए रखना चाहिए, बिना अत्यधिक परिचित हुए, ढीले हुए या उनके साथ मित्रता विकसित किए।

7. 'संकीर्तन' का क्या महत्व है?

उत्तर - हरिनाम चिंतामणि 2.34 में कहा गया है, "इसका मतलब है कि इस भौतिक जगत में कृष्ण के पवित्र नाम से बेहतर कुछ नहीं है।" "कलियुग में कृष्ण ने अपने नाम के रूप में अवतार लिया है"। इसके अलावा कहा गया है, "गोलोकेर प्रेम धन हरि नाम संकीर्तन", अर्थात हरि नाम संकीर्तन कृष्ण के धाम, यानी गोलोक वृंदावन से प्राप्त प्रेम का धन है।

- पूरी वैदिक सभ्यता का उद्देश्य परम पुरुषोत्तम भगवान को संतुष्ट करना है। सतयुग में यह ध्यान द्वारा संभव था, जब भगवान को हृदय के अंदर ध्यान में धारण किया जाता था, और त्रेतायुग में महंगे यज्ञों के द्वारा। द्वापरयुग में यह उद्देश्य मंदिर में भगवान की पूजा करके प्राप्त किया जा सकता था, और इस कलियुग में वही लक्ष्य संकीर्तन-यज्ञ के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।
- संकीर्तन के महत्व को चैतन्य चरितामृत (अंत्य 4.70-71) में और भी बल दिया गया है: "भक्ति सेवा के निष्पादन के विभिन्न तरीकों में से नौ निर्धारित प्रक्रियाएँ सबसे श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इन प्रक्रियाओं में कृष्ण को प्राप्त करने और उनके प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति जगाने की अत्यधिक शक्ति है। इन नौ प्रक्रियाओं में से सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हमेशा भगवान के पवित्र नाम का जप किया जाए। यदि कोई व्यक्ति दस प्रकार के अपराधों से बचते हुए ऐसा करता है, तो वह बहुत आसानी से भगवान के प्रेम का सबसे मूल्यवान खजाना प्राप्त कर सकता है।"

8. समझाइए कि इस आन्दोलन को संकीर्तन आन्दोलन क्यों कहा जाता है? इसमें मन्दिर की क्या ज़रूरत है?

उत्तर - संकीर्तन कलियुग का युगधर्म है। भगवान चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आंदोलन के संस्थापक हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने वैष्णव गीत "उदिलो अरुण पुरबा भागे, द्विज मणि गौरा अमानी जागे, भक्त समूह लोइया साथे गेका नगर ब्रजे" में लिखते हैं कि जब पूर्व दिशा में सूर्य उदित हुआ, तो द्विज मणि, भगवान गौरसुंदर जागे और अपने भक्तों को साथ लेकर मृदंग और कर्तालों के साथ नगर-नगर और गांव-गांव में गए। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवतम (11.5.32) में भी है: "इस युग में बुद्धिमान लोग संकीर्तन आंदोलन को अपनाएंगे, और इस प्रकार वे उस भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा करेंगे, जिनका शरीर स्वर्णिम है और जो अपने गोपनीय भक्तों के साथ सदा रहते हैं, इस कृष्ण भावनामृत आंदोलन का प्रचार करने के लिए।"

- श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरि नाम संकीर्तन को प्रस्तुत किया ताकि हर कोई भगवान के पवित्र नाम "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" का श्रवण कर सके। केवल इस महामंत्र का उच्चारण और श्रवण करने से व्यक्ति शुद्ध हो जाता है (चेतो-दर्पण-मार्जनम्)। इसलिए, हमारा कृष्ण भावनामृत आंदोलन मुख्य रूप से दुनिया भर में हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन में लगा हुआ है। श्रीमद्भागवतम 5.18.11 के अनुसार, इस आंदोलन को संकीर्तन आंदोलन कहा जाता है। श्रील प्रभुपाद ने कहा था, "मैंने अपना आंदोलन केवल हरे कृष्ण मंत्र का जप करके शुरू किया। मैंने न्यूयॉर्क में एक जगह जिसे टॉम्किंस स्क्वायर पार्क कहा जाता है, वहां से शुरुआत की और जल्द ही लोग मेरे पास आने लगे। इस तरह, कृष्ण भावनामृत आंदोलन धीरे-धीरे विकसित हुआ। कई लोगों ने इसे स्वीकार किया, और कई लोगों ने नहीं किया। जो लोग सौभाग्यशाली थे, उन्होंने इसे स्वीकार किया।"

- कृष्ण भावनामृत आंदोलन को दुनिया भर में भगवान के पवित्र नाम के कीर्तन के माध्यम से फैलाया जा रहा है, और जो लोग भ्रमित और अराजक जीवन जी रहे हैं, वे अब इस संकीर्तन में आनंद और शांति महसूस कर रहे हैं। वे इस आंदोलन के सर्वोच्च लाभ को समझ रहे हैं। यह भगवान चैतन्य महाप्रभु की कृपा है। उनकी भविष्यवाणी "पृथ्वीते नगर-आदि-ग्राम, सर्वत्र प्रचार होइबे मोर नाम" अब वास्तविक रूप से पूर्ण हो रही है, और जो लोग धैर्यवान और जागरूक हैं, वे इस महान आंदोलन के महत्व को समझ रहे हैं। (चैतन्य चरितामृत, आदि लीला 9.40)

- जब श्रील प्रभुपाद ने 1966 में न्यूयॉर्क में कृष्ण भावनामृत आंदोलन (इस्कॉन) की स्थापना की, तो उन्होंने इसके सात उद्देश्यों को निर्धारित किया। पांचवां उद्देश्य यह था कि समाज और उसके सदस्यों के लाभ के लिए भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं से संबंधित तीर्थ स्थानों का विकास किया जाए। वर्तमान में, इस्कॉन के पास दुनिया भर में 600 से अधिक मंदिर, कृषि परियोजनाएं, विद्यालय और विशेष परियोजनाएं हैं। प्रत्येक केंद्र में प्रतिदिन कक्षाएं दी जाती हैं, कीर्तन किया जाता है और कृष्ण चेतना के विज्ञान पर व्यक्तिगत शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रत्येक केंद्र में साप्ताहिक महोत्सव और शाकाहारी भोजन की व्यवस्था भी होती है, साथ ही पूरे वर्ष विशेष अवसरों पर कार्यक्रम होते हैं। सभी कार्यक्रम सार्वजनिक होते हैं। इस प्रकार, मंदिर संकीर्तन आंदोलन के प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

9. अर्चाविग्रह क्या हैं और उनकी सेवा में कुछ महत्वपूर्ण बातें क्या हैं?

उत्तर - अर्चाविग्रह हमारे ISKCON मंदिरों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उन्हें मंदिर में एक विस्तृत अनुष्ठान के माध्यम से स्थापित किया जाता है, जिसमें दिव्य व्यक्तित्वों को मूर्ति के रूप में प्रकट होने के लिए बुलाया जाता है। इसलिए, अर्चाविग्रह कृष्ण से भिन्न नहीं हैं। हमारे आचार्यों के साथ अर्चाविग्रह के संवाद की कुछ उल्लेखनीय घटनाएं हैं, जैसे श्रीपाद माधवेंद्र पुरी की कथा , साक्षी गोपाल और राधा रमण की कथा... और भी कई।कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं कि यदि अर्चाविग्रह भौतिक तत्वों जैसे पत्थर, संगमरमर, धातु, लकड़ी या चित्र से बने होते हैं, तो वे भगवान के आध्यात्मिक स्वरूप कैसे हो सकते हैं? उत्तर दिया जाता है कि चूंकि भगवान सभी भौतिक और आध्यात्मिक ऊर्जाओं के स्रोत हैं, भौतिक तत्व भी भगवान का एक रूप हैं। इसलिए, भगवान मंदिर में अर्चाविग्रह के रूप में प्रकट हो सकते हैं, चाहे वे पत्थर या अन्य तत्वों से बने हों, क्योंकि वे जो आध्यात्मिक है उसे भौतिक ऊर्जा में और भौतिक ऊर्जा को फिर से आध्यात्मिक ऊर्जा में बदल सकते हैं। अर्चाविग्रह को आसानी से परमेश्वर के रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि वे किसी भी तत्व में प्रकट हो सकते हैं जैसा वे चाहें। इस प्रकार, भले ही हम भगवान को देखने के योग्य न हों, जो हमारी भौतिक इंद्रियों की सीमा से परे हैं, फिर भी इस भौतिक सृष्टि में रहने वाले जीव परमात्मा को उनकी अर्चा-विग्रह रूप में मंदिर में पूजनीय रूप में देख और उनसे संपर्क कर सकते हैं। इसे उनकी अकारण कृपा कहा जाता है, जो भौतिक रूप से बंधे हुए जीवों पर है।

अर्चाविग्रह की सेवा के कुछ महत्वपूर्ण बिंदु जो भक्ति-रसामृत-सिन्धु में उल्लिखित हैं, वे इस प्रकार हैं:

(1) किसी को अंधेरे कमरे में अर्चाविग्रह को नहीं छूना चाहिए।

(2) किसी को अर्चाविग्रह की पूजा में नियमों का कड़ाई से पालन करने में विफल नहीं होना चाहिए।

(3) किसी को बिना ध्वनि किए अर्चाविग्रह के मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(4) किसी को भी ऐसा भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित नहीं करना चाहिए जिसे कुत्तों या अन्य निम्न जानवरों ने देखा हो।

(5) पूजा करते समय मौन नहीं तोड़ना चाहिए।

(6) पूजा करते समय पेशाब या मल त्याग नहीं करना चाहिए।

(7) बिना फूल अर्पित किए धूप नहीं जलानी चाहिए।

(8) बिना सुगंध वाले बेकार फूल अर्पित नहीं करने चाहिए।

(9) हर दिन अपने दांतों को अच्छी तरह से साफ करना चाहिए।

(10) यौन संबंध बनाने के तुरंत बाद मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(11) किसी स्त्री को उसके मासिक धर्म के दौरान नहीं छूना चाहिए।

(12) किसी मृत शरीर को छूने के बाद मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(13) लाल या नीले रंग के कपड़े या बिना धुले कपड़े पहनकर मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(14) मृत शरीर को देखने के बाद मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(15) मंदिर के अंदर वायु पास नहीं करनी चाहिए।

(16) मंदिर में क्रोधित नहीं होना चाहिए।

(17) श्मशान भूमि का दौरा करने के बाद मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(18) अर्चाविग्रह के सामने डकार नहीं लेनी चाहिए। जब तक भोजन पूरी तरह से पच न जाए, तब तक मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।
(19) गांजा या अन्य नशीले पदार्थ नहीं पीने चाहिए।
(20) अफीम या समान मादक पदार्थ नहीं लेने चाहिए।
(21) अपने शरीर पर तेल मलने के बाद अर्चाविग्रह कक्ष में प्रवेश या अर्चाविग्रह को स्पर्श नहीं करना चाहिए।
(22) किसी भी ऐसे शास्त्र का अपमान नहीं करना चाहिए जो भगवान की सर्वोच्चता सिखाता हो।
(23) किसी विरोधी शास्त्र को प्रस्तुत नहीं करना चाहिए।
(24) अर्चाविग्रह के सामने पान नहीं चबाना चाहिए।
(25) ऐसे फूल को अर्पित नहीं करना चाहिए जिसे किसी अशुद्ध बर्तन में रखा गया हो।
(26) फर्श पर बैठकर अर्चाविग्रह की पूजा नहीं करनी चाहिए; एक बैठने की जगह या कालीन होना चाहिए।
(27) स्नान करने से पहले अर्चाविग्रह को स्पर्श नहीं करना चाहिए।
(28) तीन पंक्तियों वाला तिलक अपने माथे पर नहीं लगाना चाहिए।
(29) बिना हाथ-पैर धोए मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

(ऐ) उत्तर देने के लिए अतिरिक्त महत्वपूर्ण बातें:

1. कर्मयोग,ध्यानयोग तथा भक्तियोग की विधियों को समझाइए?

उत्तर - कर्मयोग - क्रमिक विकास द्वारा कर्मकाण्डी व्यक्ति को भौतिक भोगों तथा उनसे प्राप्त होने वाले दुःखों का ज्ञान होने लगता है। परन्तु वह यह भी जानता है कि वह कर्म का त्याग नहीं कर सकता, अन्यथा वह अपने शरीर का पालन किस प्रकार करेगा ? इस प्रकार वह अपने कर्म के फलों से अनासक्ति के स्तर पर पहुँचता है और भगवद्गीता के विख्यात् श्लोक के सिद्धान्त का पालन करता है

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥
(भगवद्गीता २.४७)

अनुवाद : “तुम्हें केवल अपने नियत कर्म करने का अधिकार है, किन्तु उन कर्म के फलों पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। कभी भी स्वयं को अपने कार्यफलों
का कारण मत समझो और कभी भी अपने कर्तव्य न करने से भी आसक्त मत होओ।"

- यह निष्काम योग का पहला स्तर है। हो सकता है कि आरम्भ में व्यक्ति अपने कर्मफलों को किसी अस्पताल, सामाजिक कार्य आदि के लिए दान देकर उनसे अनासक्त होने का प्रयास करे । यद्यपि इस प्रकार का दान भौतिक ही है, तथापि किसी भी अच्छे कार्य के लिए अपने कर्मफलों को त्यागने से धीरे-धीरे व्यक्ति का मन शुद्ध होने लगता है। कम से कम उसका मन स्वार्थी इच्छाओं से मुक्त होने लगता है। ऐसी अवस्था में वह कृष्णभावना के ज्ञान को समझ सकता है।

- निष्काम कर्मयोगी का ध्येय अध्यात्म होता है और श्रीकृष्ण परम भगवान् हैं, हो सकता है कि उसे इसका ज्ञान न भी हो । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, " व्यक्ति को भगवान् श्रीविष्णु की प्रसन्नता के लिए कार्य करने चाहिए, अन्यथा वे कार्य बन्धन का कारण बनते हैं।" यह बन्धन में पड़े बिना कार्य करने की कला और कर्मयोग की उच्चावस्था है। अनेक लोग कहते हैं "मैं कर्मयोगी हूँ" । परन्तु केवल कठोर परिश्रम करने से व्यक्ति कर्मयोगी नहीं बन जाता। उसे अपने कर्म के फलों से अनासक्त होना होगा।
- भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कर्मयोगी के गुणों का वर्णन करते हैं
  मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा । निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥
  अनुवाद : "इसलिए, हे अर्जुन! अपने समस्त कर्मों को मुझमें समर्पित करके, मेरे पूर्ण ज्ञान से युक्त, लाभ की इच्छा से रहित, स्वामित्व के दावे से परे तथा आलस्य को त्यागकर युद्ध करो। " (भगवद्गीता ३.३०)

कर्मयोगी को चाहिए कि वह :

■ अपने कर्मफल श्रीभगवान् को अर्पित करे आध्यात्मिक चेतना में कार्य करे
■ कर्मफलों से अनासक्त रहे
■ स्वामित्व की भावना का त्याग कर दे
■ आलस के बिना कार्य करे

धीरे-धीरे कर्मयोगी इस जगत् से परे तत्त्वों को समझने लगता है।

ध्यान योग - अष्टांगयोग मन एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करके अंततः उन्हें श्रीभगवान् पर केन्द्रित करने की पद्धति है। इस पद्धति के आठ अंग (अष्टांग) हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । आरम्भ में कठोरतापूर्वक करणीय-अकरणीय कार्यों का पालन किया जाता है और तत्पश्चात् योगी आसन-प्राणायम द्वारा अपने हृदय में स्थित परमात्मा पर ध्यान करने का प्रयास करता है। अवांछित तथा भटकाने वाले विचार आते ही वह उन्हें निकाल बाहर करता है। इस प्रकार ध्यानपथ पर प्रगति करते हुए वह श्रीभगवान में पूर्ण समाधि की अवस्था प्राप्त करता है। यह मार्ग अत्यन्त जटिल तथा कठोर नियमों एवं अनुशासन की मांग करता है।

भक्तियोग - भक्तियोग श्रीभगवान् की निःस्वार्थ सेवा के माध्यम से भगवद्प्रेम विकसित करने का योग है ।इस मार्ग पर साधक अपनी समस्त इन्द्रियों को इन्द्रियों के स्वामी श्रीभगवान् की सेवा में नियुक्त करता है। ऐसा करने से हम समस्त भौतिक उपाधियों से ऊपर उठ जाते हैं, हमारे चित्त एवं इन्द्रियाँ शुद्ध होते हैं और हृदय में भगवद्प्रेम जागृत होता है। प्रह्लाद महाराज भगवद्भक्ति की नौ विधियों का वर्णन करते हैं। इनमें से किसी एक के पालन द्वारा व्यक्ति भक्तियोग की पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

श्रीप्रहाद उवाच
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥
(श्रीमद्भागवतम् ७.५.२३-२४)

अनुवाद : "प्रह्लाद महाराज ने कहा : "भगवान् श्रीविष्णु के पवित्र नाम, रूप, गुणों, साज-सामान एवं लीलाओं का श्रवण एवं कीर्तन करना, उनका
स्मरण करना, श्रीभगवान् के चरणकमलों की सेवा करना, सोलह उपचार के साथ उनकी अर्चना करना, श्रीभगवान् की स्तुति करना, उनके सेवक बनना,
श्रीभगवान् को अपना घनिष्ठ मित्र मानना और अपना सर्वस्व उन्हें समर्पित करना (दूसरे शब्दों में, शरीर, मन तथा वाणी से उनकी सेवा करना)। इन
नौ विधियों को शुद्ध भक्ति स्वीकार किया गया है। जिस व्यक्ति ने इन नौ विधियों द्वारा अपना जीवन भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में समर्पित किया
है, उसे सर्वोच्च विद्वान् मानना चाहिए, क्योंकि उसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।"

2. 'निर्विशेषवाद' क्या है? इसे क्यों घटिया कहा जाता है तथा इसे किसने जन्म दिया?

उत्तर - निराकारवाद का दर्शन शंकराचार्य द्वारा प्रारंभ किया गया था। इस दर्शन के अनुसार, परमात्मा निराकार है और उसका कोई रूप नहीं है। यह निराकारवाद का दर्शन बहुत आम है क्योंकि सामान्यतः असुर प्रवृत्ति के लोग ईश्वर बनना चाहते हैं– उनकी किसी के प्रति समर्पण या सेवा करने में कोई रुचि नहीं होती, और निश्चित रूप से भगवान की सेवा करने में तो नहीं।
श्रील प्रभुपाद गीता (2.2) के तात्पर्य में उल्लेख करते हैं कि "संपूर्ण सत्य को तीन चरणों में समझा जाता है—पहला ब्रह्म, जो सर्वव्यापी और निराकार चेतना है; दूसरा परमात्मा, जो सभी जीवों के हृदय में स्थित है; और तीसरा भगवान, जो भगवान श्रीकृष्ण के रूप में सर्वोच्च व्यक्तित्व हैं।"
श्रीमद्भागवतम् (1.2.11) में भी इसी पूर्ण सत्य की अवधारणा को समझाया गया है:
इन तीन दिव्य पहलुओं को सूर्य के उदाहरण से समझा जा सकता है, जिसमें तीन अलग-अलग पहलू होते हैं—सूर्य की किरणें, सूर्य का सतह और स्वयं सूर्य ग्रह। जो व्यक्ति केवल सूर्य की किरणों का अध्ययन करता है, वह प्रारंभिक छात्र होता है। जो व्यक्ति सूर्य की सतह को समझता है, वह अधिक उन्नत होता है और जो व्यक्ति सूर्य ग्रह के भीतर प्रवेश कर सकता है, वह सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करने वाला होता है।
साधारण छात्र जो केवल सूर्य की किरणों—उनकी सर्वव्यापकता और उनके निराकार प्रकृति—को समझकर संतुष्ट हो जाते हैं, उनकी तुलना केवल ब्रह्म स्वरूप का एहसास करने वाले लोगों से की जा सकती है। जो छात्र और अधिक उन्नति करते हैं, वे सूर्य की सतह को जान सकते हैं, जिसकी तुलना परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान से की जा सकती है। और जो छात्र सूर्य ग्रह के हृदय में प्रवेश कर सकता है, उसकी तुलना उन लोगों से की जा सकती है, जो परम सत्य के व्यक्तिगत स्वरूप को समझते हैं। इस प्रकार, भक्तजन, जो परम सत्य के भगवान स्वरूप को पहचानते हैं, वे सर्वोच्च आध्यात्मिक साधक होते हैं, हालांकि सभी छात्र, जो परम सत्य का अध्ययन कर रहे हैं, एक ही विषय पर ध्यान दे रहे होते हैं। सूर्य की किरणें, सूर्य का सतह और सूर्य ग्रह की आंतरिक घटनाओं को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है, फिर भी इन तीन विभिन्न चरणों के छात्रों की श्रेणी एक जैसी नहीं होती। इसलिए, निराकारवाद का दर्शन निम्न है क्योंकि यह केवल परमात्मा के आंशिक संबंध को समझता है। यद्यपि वे भी श्रीकृष्ण का ही अध्ययन और अनुभव कर रहे होते हैं, लेकिन उनकी दृष्टि केवल एक विशेष पहलू तक ही सीमित होती है।

3. शून्यवाद का सिद्धांत क्या है? यह ग़लत क्यों है? तथा इसे किसने शुरू किया?

उत्तर - शून्यवाद की दार्शन की शुरुआत भगवान बुद्ध द्वारा की गई थी। इस दर्शन का निष्कर्ष यह है कि अंततः कुछ भी नहीं होता है, केवल एक शून्य होता है। बौद्ध यह कल्पना करते हैं कि अंततः सब कुछ शून्य हो जाता है और मृत्यु के बाद सब कुछ अस्तित्व समाप्त कर देता है। वे यह मानते हैं कि अपने अस्तित्व को समाप्त करना ही उनके सभी समस्याओं का समाधान होगा। एक उदाहरण जो वे देते हैं वह यह है कि गुब्बारे में हवा होती है, लेकिन जब गुब्बारा फट जाता है, तो हवा कहाँ जाती है? यह दर्शन उनके भौतिक अस्तित्व से उत्पन्न निराशा पर आधारित है। वे सोचते हैं कि सुख और आनंद असंभव हैं क्योंकि उनके पास केवल भौतिक सुख की जानकारी होती है, जिसे वे सही रूप से असली सुख नहीं मानते। इसलिए वे निष्कर्ष निकालते हैं कि सबसे अच्छा यह है कि अस्तित्व समाप्त हो जाए – यानी निर्वाण प्राप्त कर शून्य (शून्यता) बन जाना।

शून्यवाद की यह दार्शनिकता गलत है क्योंकि यह वेदों के विपरीत है। आत्मा शाश्वत है और किसी भी परिस्थिति में न तो इसे मारा जा सकता है और न ही इसका अस्तित्व समाप्त हो सकता है। भगवान श्रीकृष्ण भी गीता 15.7 में कहते हैं, “मम एव अंशो जीव लोके, जीव भूत सनातनः” इसका अर्थ है कि इस भौतिक जगत में सभी जीव मेरे शाश्वत अंश हैं। यहां ‘शाश्वत’ शब्द स्पष्ट रूप से यह संकेत करता है कि जीव सनातन हैं और सदैव अस्तित्व में रहते हैं।

4. व्यासदेव की असन्तुष्टि के कारण के बारे में बताइए तथा उसे सुधारने के लिए क्या किया गया?

उत्तर - व्यासदेव ने वेदों को चार सरल भागों में विभाजित किया, ताकि कम बुद्धि वाले लोग भी इसे समझ सकें। महाभारत की महान रचना के बाद भी उनके मन में असंतोष बना रहा, और यह असंतोष इसलिए था क्योंकि उन्होंने भगवान की भक्ति सेवा को विशेष रूप से नहीं बताया, जो कि जीवों और स्वयं भगवान के लिए प्रिय है। व्यासदेव अपने दोषों पर पछता रहे थे, तभी नारद मुनि सरस्वती नदी के तट पर स्थित उनकी कुटिया में आए, और उनके बीच संवाद इस प्रकार हुआ:
व्यासदेव ने कहा, “हे गुरुदेव, मैं नहीं जानता। कृपया मुझे बताइए कि मैं क्यों दुखी हूँ।”नारद मुनि ने कहा, “तुमने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (धार्मिकता, आर्थिक विकास, इंद्रियों का भोग, और मुक्ति) को प्राथमिकता दी है, लेकिन तुमने कृष्ण की मधुर लीलाओं का वर्णन नहीं किया है।हालांकि तुमने धार्मिक कृत्यों से शुरू होने वाले चार सिद्धांतों का व्यापक रूप से वर्णन किया है, तुमने भगवान वासुदेव की महिमा का वर्णन नहीं किया। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं का अधिक स्पष्ट रूप से वर्णन करो।”
व्यासदेव ने कहा, “इतना कार्य करने के बावजूद मैं संतुष्ट नहीं हूँ। इसलिए मैं आपसे अपने असंतोष के मूल कारण के बारे में पूछता हूँ, क्योंकि आप असीम ज्ञान के व्यक्ति हैं।”नारद मुनि ने कहा, “तुमने वास्तव में भगवान की निष्कलंक महिमा का प्रचार नहीं किया। एक ऐसा दर्शन, जो भगवान की दिव्य इंद्रियों को संतुष्ट नहीं करता, उसे व्यर्थ माना जाता है। लोग स्वाभाविक रूप से भोग की ओर आकर्षित होते हैं, और तुमने उन्हें धर्म के नाम पर उस मार्ग पर प्रोत्साहित किया है।लेकिन साधारण

लोग यह नहीं समझते हैं कि, यह सत्य है कि इंद्रियों के नियंत्रण के योग से एक व्यक्ति इच्छाओं और काम वासना की परेशानियों से राहत पा सकता है, लेकिन यह आत्मा की संतुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं है। आत्मा की संतुष्टि केवल भगवान की भक्ति सेवा के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।जीव के लिए भौतिक कष्ट जो अनावश्यक हैं, उन्हें भक्ति सेवा की प्रक्रिया के माध्यम से सीधे दूर किया जा सकता है। इसलिए, विद्वान व्यासदेव ने इस वैदिक साहित्य, श्रीमद भागवतम, की रचना की, जो परम सत्य से संबंधित है।"

5. भगवद्गीता का उपदेश देने के समय की परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - भगवद गीता की रचना लगभग 5000 वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र के युद्धभूमि में भगवान कृष्ण द्वारा उनके प्रिय मित्र अर्जुन को उपदेश देते हुए हुई थी। गीता का दुनिया में एक विशेष स्थान है क्योंकि यह एकमात्र ग्रंथ है जिसमें स्वयं भगवान द्वारा दिए गए उपदेश सीधे रूप से प्रस्तुत हैं।

एक राजघराना था, जिसमें कुरु और पांडु दोनों परिवार थे। पांडु के पाँच पुत्र थे: युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। कृष्ण और अर्जुन मित्र थे। यद्यपि ये सभी एक ही परिवार के थे और कुरु कहलाते थे, फिर भी पांडु के पाँचों पुत्रों और बाकी कुरु परिवार के बीच इस बात पर विवाद हो गया कि राजा धृतराष्ट्र के बाद सिंहासन का उत्तराधिकारी कौन होगा। इसी कारण पांडु के पुत्र 'पांडव' कहलाए।

पांडव इस विवाद को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाना चाहते थे और उन्होंने सुझाव दिया कि कुरु राज्य को अपने पास रख सकते हैं, बस उन्हें पाँच छोटे गाँव दे दिए जाएं—एक-एक गाँव प्रत्येक भाई के लिए, ताकि वे क्षत्रिय धर्म का पालन कर सकें। लेकिन दुर्योधन ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और कहा कि वह उन्हें एक सुई की नोक जितनी जमीन भी नहीं देगा। इस प्रकार, कुरु ने पांडवों को युद्ध करने के लिए मजबूर कर दिया, और इस लड़ाई में जीतने वाला राजा बनने वाला था।

सैनिक बल और सेना के नेतृत्व की दृष्टि से, कुरु सेना अधिक शक्तिशाली दिखती थी क्योंकि उनके पास महान और कुशल सेनापति भीष्म और द्रोणाचार्य थे। इसलिए कुरु सोचते थे कि वे पांडवों की सेना को आसानी से हरा देंगे।

कृष्ण दोनों पक्षों के मित्र थे और वे सभी एक ही परिवार के सदस्य थे, इसलिए कृष्ण किसी भी पक्ष के प्रति पक्षपात नहीं दिखाना चाहते थे। उन्होंने अर्जुन (जो पांडवों के नेता थे) और दुर्योधन (जो कुरु सेना के नेता थे) से कहा कि वे दोनों में से एक को अपनी सेना देंगे और दूसरे के साथ वे स्वयं रहेंगे, लेकिन कृष्ण ने यह भी कहा कि वे युद्ध नहीं करेंगे। कृष्ण के पास एक बहुत बड़ी और शक्तिशाली सेना थी, जिसे दुर्योधन ने चुना। इससे अर्जुन को वह कृष्ण मिले, जो युद्ध नहीं करेंगे।

हालांकि, कृष्ण ने युद्ध नहीं करने का वचन दिया था, फिर भी उन्होंने अर्जुन का सारथी बनने की पेशकश की। और यही भगवद गीता की शुरुआत थी जिसमें अर्जुन के रथ पर कृष्ण सारथी बने हुए हैं।

Laxmi Narasimha Das